१२	महाराजा रावण	26
१३	मृत्यु शैय्या से महाराजा रावण का उपदेश	28
१४	महाराजा रावण का निधन	30
१५	तपस्विनी माता अंजना	32
१६	योगेश्वर श्रीकृष्ण	35
१७	माता गंगोत्री का आदेश	39
१८	विदुषी द्रौपदी	41
१९	दानवीर कर्ण का वध	44
२०	धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर	46
२१	अंतरिक्ष, एक कल्पवृक्ष	49
२२	दीन राजा	51
२३	वैरागी महात्मा	53
२४	वृक्षों एवं वनस्पतियों में जीवात्मा नहीं होता	55
२५	योग का वास्तविक स्वरूप	56
२६	गुरुदेव की कर्मभूमि, लाक्षागृह बरनावा	59

१ भूमिका

परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से मुझे गुरुदेव ब्र. कृष्णदत्त जी के प्रथम बार दर्शन करने का सौभाग्य २५ दिसम्बर सन् १९८० को श्री हरिकिशन बस्सी जी के घर, ३८-जोरबाग, नई दिल्ली में मिला। उस समय गुरुदेव अस्वस्थ थे।

सन् १९८१ में रक्षाबन्धन के अवसर पर लाक्षागृह बरवाना में मैंने उनका प्रथम बार प्रवचन सुना। प्रवचन सुनकर हृदय गद्गद् हो गया। ऐसा लगा जैसे कोई आदि-ऋषि अपनी शिष्य मण्डली को इहलोक-परलोक की गाथा सुना रहा हो। अपठित होते हुए योगमुद्रा में ऐसी दिव्यता से युक्त प्रवचन सुनना, विश्व का महानतम आश्चर्य था। गुरुदेव के ही शरीर द्वारा इनके किसी पूर्वजन्म के सूक्ष्मशरीर धारी, महान शिष्य महर्षि महानन्द जी का प्रवचन सुना। महर्षि महानन्द जी का प्रवचन ऐसे लग रहा था कि वे संसार का आँखों देखा हाल वर्णन कर रहे हैं। मेरे लिए यह विश्व का अनोखा चमत्कार था।

मेरे मित्र श्री हरीराम गुप्ता, श्री सुदेश गुप्ता और मैंने मिलकर १९ नवम्बर, १९८२ से २३ नवम्बर, १९८२ तक अजमल खाँ पार्क, करोल बाग, नई दिल्ली में सार्वजनिक स्थान पर गुरुदेव के प्रवचन करवाये जिन्हें सुनकर लोग अचम्भे में पड़ गये। हम इस ज्ञान को सतत प्रचारित करना चाहते थे क्योंकि इसमें प्रचलित मान्यता से विलक्षण ज्ञान था। हमारे महापुरुषों के दिव्य जीवन को आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व चेतांग और रमाशंकर नामक विद्वानों ने स्वार्थ और लोभवश रामायण और महाभारत जैसे अद्भुत तथा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थों को प्रक्षेपित किया। मेरी इच्छा गुरुदेव के प्रवचनों के इन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं को प्रचारित करने की रही।

सन् १९८३ से १९९२ तक मुझे वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.) का कई वर्षों तक मन्त्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवधि में मेरे कई लेख, अनेक समाचार पत्रों में छपे। ये सभी लेख गुरुदेव के प्रवचनों पर आधारित थे। अधिकतर लेख दैनिक पंजाब केसरी के मुख्य पृष्ठ पर छपे। पाठकों ने कई पत्र भेजकर मेरा उत्साह बढ़ाया।

इस पुस्तक में उन्हीं लेखों का संग्रह किया गया है। इसका मुख्य प्रयोजन महापुरुषों व माताओं का विशुद्ध चरित्र प्रस्तुत करना है। पूज्यपाद गुरुदेव की पवित्र आत्मा ही हमारी प्रेरणा का स्रोत है।

मैं अपने मित्रों श्री हरीराम गुप्ता, डा. रामकुमार गोयल, पं. जयनारायण कौशिक, श्री बिशम्बर दयाल, श्री प्रेम कुमार सहगल, श्री इकबाल सिंह का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने मेरा उत्साहवर्द्धन किया।

मैं विशेष रूप से डॉ. कृष्णावतार जी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्हांने अमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक के निर्माण में अकथनीय सहयोग दिया।

और अंत में श्री अशोक चौहान जी का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने पुस्तक को यह स्वरूप देने में अद्वितीय योगदान दिया।

नफे सिंह देसवाल

प्रधान-आर्यसमाज, देवनगर, नई दिल्ली

२ प्राक्कथन

परमात्मा द्वारा निर्मित इस प्रवाहमान सृष्टि में मनुष्य को संस्कृति से ही सम्बल मिलता है। पूर्व पुरुषों द्वारा पालित जीवन विधि को संस्कृति कहा जाता है। दिव्य संस्कारां से पालित जीवन-शैली को अपने आचरण से अभिव्यक्त करने वाले महान पुरुष हमारी संस्कृति के प्राण हैं और कोई भी संस्कृति अगर इतिहास में आदर प्राप्त करती है, तो वह उन महापुरुषों द्वारा अपनायी जीवन शैली से ही सम्भव है जो आगे आने वाली पीढ़ी को उसे अपनाने की प्रेरणा भी देती है और गौरवान्वित होने की भावना भी।

सृष्टि के आदिकाल से ही वैदिक संस्कृति सबसे पुरातन और महापुरुषों की दिव्य जीवन गाथा को अपने में समावेशित किए हुए है, लेकिन कुछ स्वार्थी विद्वानों ने लोभवश हमारी सांस्कृतिक धरोहर को ही विकृत करने की कोशिश की और कालान्तर में हमारे महापुरुषों के चरितां को इस तरह से प्रचारित किया गया, जिससे लगे कि जिन महापुरुषों का जीवन इतना दिव्य है, उनमें भी सामान्य व्यक्ति जैसे दोष समाये हुए हैं।

भारतीय संस्डुति के प्राण कहे जाने वाले भगवान श्रीराम और भगवान श्रीकृष्ण जैसे दिव्य महापुरुषों के चरित को भी दोषों से भरने की कोशिश की गई। मनुष्य भले ही अज्ञानता से सनता रहे, परन्तु परमात्मा अपनी दिव्य कृपा मनुष्य पर करते ही रहते हैं, तभी तो जन्म-जन्मान्तरां की दिव्यात्मा शृंगी ऋषि कृष्णदत्त जी को कलियुग में जन्म लेना पड़ा और अपठित रहते हुए समाधि अवस्था में प्रवचन देकर वैदिक संस्कृति की दिव्यता का ऐसा उद्घाटन किया कि सारी अज्ञानता को ही तिरोहित कर दिया। पूज्यपाद गुरुदेव पर अगाध श्रद्धा रखने वाले आदरणीय श्री नफे सिंह देसवाल जी जब से वैदिक अनुसंधान समिति के मन्त्री बने, तभी से इस महान ज्ञान को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित करने में संलग्न रहे।

श्री नफे सिंह देसवाल जी के उसी महान प्रयास को जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था, 'महापुरुषों के जीवन रहस्य' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है जिसके माध्यम से हम अपने महापुरुषों के जीवन की दिव्यता का स्मरण कर सकेंगे। श्री देसवाल जी का यह प्रयास निश्चित ही हम सभी को गौरवान्वित करने का अवसर प्रदान करेगा। **डॉ. कृष्णावतार**

३ आभार व धन्यवाद

पूज्यपाद गुरुदेव श्रृंगी ऋषि कृष्णदत्त जी के द्वारा विशेष योगस्थ समाधि में दिये गये प्रवचनों में वैदिक संस्कृति का ऐसा दिव्य स्वरूप उद्घाटित होता है, जिस पर सभी वैदिकधर्मी गौरवान्वित होकर अपने जीवन में उस जीवन विधि को अपनाने का प्रयास कर सकते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने प्रवचनों में हमारी महान और दिव्य सांस्कृतिक धरोहर के वाहक, महापुरुषों की जीवन गाथा को अभिव्यक्त किया है जो प्रचलित मान्यताओं से भी ज्यादा दिव्य है, जिस दिव्यता का क्षरण इतिहास लेखकों ने हमारी संस्कृति को न्यूनतर करने के लिए किया।

प्रवचनों की इसी दिव्यता और महापुरुषों के वास्तविक स्वरूप को, जो गुरुदेव ने अपने प्रवचनों में वर्णित किया है, उसी को जनमानस के प्रचारार्थ श्री नफे सिंह देसवाल जी ने समाचार-पत्रों में अपनी लेखकीय मर्मज्ञता से लिखा है।

श्री नफे सिंह देसवाल जी की मित्र-मण्डली के सदस्य और गुरुदेव के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाले श्री हरीराम गुप्ता जी, डॉ. रामकुमार गोयल, श्री बिशम्बर दयाल जी अक्सर वजीरपुर स्थित श्री हरीराम गुप्ता जी के आवास पर मिलते हैं, जिसमें गुरुदेव के महान ज्ञान के विषय में चर्चा होती है। क्योंकि श्री देसवाल जी द्वारा विभिन्न समाचार-पत्रों में लिखे लेख आज भी बहुत अधिक पठनीय हैं, इसी दृष्टि से उन लेखों को प्रकाशित करने का जैसे ही विचार बना, तो श्री बिशम्बर दयाल जी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रमा देवी जी की स्मृति में पुस्तक को प्रकाशित करने का आग्रह किया।

निश्चित ही यह उस देवी का सौभाग्य है जिसकी स्मृति में यह दिव्य-ज्ञान जनमानस में पहुँच कर महापुरुषों की दिव्यता को प्रचारित करेगा।

२३३२, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली में रहने वाले श्री बिशम्बर दयाल जी व श्रीमती रमा देवी जी के दो सुपुत्र हैं। बड़े सुपुत्र श्री उपेन्द्र दयाल व धर्मपत्नी श्रीमती मधु दयाल, पौत्र श्री मनमीत दयाल व पौत्री कु गरिमा दयाल, छोटे सुपुत्र श्री पवन दयाल व धर्मपत्नी श्रीमती मंजु दयाल, पौत्र श्री दीपांश दयाल व श्री अरिन दयाल हैं। पूरा परिवार धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि लेता है जो माता रमा देवी जी के ही संस्कारों का प्रभाव है।

परमात्मा की नियति के वशीभूत २८ मई, २०१२ को श्रीमती रमा देवी जी का शरीरान्त हो गया था। जीवन की सार्थकता इसी में है कि आपके होने से समाज में सद्भाव बढ़े। श्रीमती रमा देवी जी की स्मृति में प्रकाशित यह ज्ञान धरोहर भी जन-मानस को निश्चित ही सद्भाव से जोड़ेगी, ऐसी आशा है।

श्री बिशम्बर दयाल जी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रमा देवी जी की स्मृति में इस पुस्तक को प्रकाशित कराकर एक सार्थक स्मृति दी है। पुस्तक प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देने के लिए श्री बिशम्बर दयाल जी व उनके परिवार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और उनको आभार व धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि सद्ज्ञान के प्रकाशन में उनका आर्थिक सहयोग आगे भी ऐसे ही प्राप्त होता रहेगा। **डॉ. कृष्णावतार**

४ आदि ऋषि का पुनर्जन्म

आध्यात्मिक जगत की महान विभूति ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी पुनर्जन्म के साक्षात चमत्कार थे। अपने पूर्व जन्मों की तपस्या एवं योगाभ्यास के फलस्वरूप ये श्वासन की मुद्रा में लेटने के, लगभग १० मिनट बाद,

योगमुद्रा में चले जाते थे। आरम्भ में सस्वर वेदपाठ करने के बाद, लगभग एक घंटे तक शुद्ध हिन्दी में, उच्च-कोटि का प्रवचन करते थे। प्रवचन समाप्ति से पूर्व पुनः वेदपाठ करते और अपनी सामान्य अवस्था में आ जाते थे। सामान्य अवस्था में आने के बाद, इन्हें अपनी 'विशेष अवस्था' में दिये गये प्रवचन के विषय में कुछ भी याद नहीं रहता था। जब प्रवचन करते थे, तब ऐसा लगता था जैसे कोई आदि-ऋषि अपनी शिष्य-मण्डल को इहलोक, परलोक की गाथा सुना रहा हो। प्रवचन करते समय इनका सिर दायें-बायें शीघ्रता से हिलता रहता था।

ब्रह्मचारी जी का जन्म जिला गाजियाबाद (उ.प्र.) में मुरादाबाद के पास खुर्रमपुर, सलीमाबाद नामक ग्राम में सन् १९४२ में, एक निर्धन परिवार में हुआ। इनके सभी परिवारी जन अनपढ़ हैं। इन्हें भी इस जीवन में कहीं भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला। इनकी लगभग तीन वर्ष की आयु में ही प्रवचन की क्रिया देखकर अनपढ़ माता-पिता तथा ग्रामवासियों ने इन पर भूत-प्रेत का साया माना। मारपीट द्वारा व मिर्च आदि सुंघाकर इनका उपचार भी करवाया गया। इन्होंने ७ वर्ष की आयु से लेकर १५ वर्ष की आयु तक अपने ही गांव के एक जमींदार के घर पशु चराने का कार्य किया। ग्रामवासी समय-समय पर ब्रह्मचारी जी का प्रवचन सुनते रहते थे। एक दिन १५ वर्ष की आयु में ऐसे ही प्रवचन की समाप्ति पर इनके पिता जी ने क्रोधवश इनकी पिटाई कर दी। इससे इनको मानसिक वेदना हुई और उसी सर्द रात्रि में इन्होंने अपना घर त्याग दिया।

इधर-उधर कुछ मास घूमने के बाद ब्रह्मचारी जी बरनावा जा पहुंचे। महाभारत काल में यह गांव वारणावत के नाम से प्रसिद्ध था। आसपास के ग्रामों में ब्रह्मचारी जी महात्मा के नाम से प्रसिद्ध हो गए। यहीं के मनुष्यों ने ब्रह्मचारी जी का आश्रम लाखामण्डप पर बना दिया। ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से सन् १९६० में यहां गांधी धाम समिति (रजि.) की स्थापना की गई। तब से अब तक इस प्राचीन ऐतिहासिक स्थान का शीघ्रता से विकास हुआ है। यहां पर सन् १९७७ से श्री महानन्द संस्कृत विद्यालय (रजि.) चल रहा है, जिसमें विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। पांच विशाल यज्ञशालायें और श्री महानन्द मन्दिर यहां विशेष रूप से दर्शनीय हैं। ब्रह्मचारी जी यहां प्रतिवर्ष चतुर्वेद पारायण याग करवाते थे जिसमें देश के अनेक विद्वानों को आमन्त्रित किया जाता था। ब्रह्मचारी जी के अथक प्रयत्नों से यहां पर हरी-भरी लहराती हुई खेती देखकर मन प्रसन्नता से जगमगा उठता है। यहां का वातावरण शांत होने के कारण यह स्थान ध्यान लगाने वालों के लिए विशेष रूप से लाभदायक है।

श्री प्रकाश चन्द्र शास्त्री के प्रयत्नां से इनका दिल्ली में पहला प्रवचन सन् १९६१ में भारत सेवक समाज, विनय नगर के प्रांगण में हुआ। योगमुद्रा में आत्मा-परमात्मा पर दिया गया प्रवचन सुनकर लोग आश्चर्यचकित रह गए। प्रवचनों की इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखने के लिए सन् १९६५ में वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.) की स्थापना की गई। इन्होंने अपने प्रवचनों में विभिन्न अलंकारों व अनेक भ्रान्तियों का वास्तविक स्वरूप बताकर वैदिक धर्म का विशुद्ध रूप संसार के समक्ष रखा है। इन्होंने धर्म को एकवचन बताया है। सभी सम्प्रदाय व रूढ़ियां स्वार्थवश मनुष्यों ने चलाए हुए हैं। इन्होंने अपने प्रवचनों में बताया कि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वशिष्ठ, व्यास व शृंगी आदि उपाधियां होती थीं व महाभारत काल से पूर्व सारे संसार में वैदिक संस्कृति थी।

ब्रह्मचारी जी की यज्ञों के प्रति विशेष रुचि थी। इनकी प्रेरणा से सैंकड़ों व्यक्ति प्रतिवर्ष यज्ञ कराने के बाद इनका प्रवचन कराते थे। इनसे प्रेरणा लेकर अनेक व्यक्ति दैनिक हवन करते हैं। ब्रह्मचारी जी को अपनी 'विशेष समाधि-अवस्था' में जन्म-जन्मान्तरां का आंखों देखा हाल स्मरण हो जाता था। ब्रह्मचारी जी की आत्मा

किसी आदि ऋषि की आत्मा थी और प्रारब्धवश उन्हें यह वर्तमान जन्म मिला हुआ था। इनके विषय में गहन अनुसन्धान की आवश्यकता है। इन्होंने जिन-जिन औषधियों और धातुओं के नाम बताए हैं उन पर विद्वानों, वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों द्वारा खोज की जानी चाहिए। यदि ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की ओर ध्यान दिया जाये तो प्राचीन भारत का विशुद्ध रूप सामने आ सकता है और आधुनिक समाज में व्याप्त रूढ़ियां समाप्त हो सकती हैं।

ब्रह्मचारी जी ने अपने छोटे से जीवन काल में ५००० के लगभग वेद पारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, जिनमें लगभग ३५ चतुर्वेद पारायण यज्ञ हैं। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूम कर ब्रह्मचारी जी ने महर्षि दयानन्द द्वारा पुनर्जागृत वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को हज़ारों-हज़ारों परिवारों में देदीप्यमान कर दिया। अनेक श्रद्धालुओं को 'दैनिक-यज्ञ' करने के लिए प्रोत्साहित किया।

आजीवन ब्रह्मचारी रहकर सात्विक एवं सादा जीवन जीने वाले ब्रह्मचारी जी की सहजता, सरलता और सादगी आदि गुणों ने सभी विचारशीलों को अत्यन्त प्रभावित किया। उनकी विलक्षण स्मरण-शक्ति और सबके प्रति अगाध प्रेम ने उन्हें 'सभी का अपना' बना दिया था।

यज्ञों के विस्तार की भूमिका बनाते हुए और अपने दिव्य यौगिक प्रवचनों द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का प्रसारण करते हुए, यह दिव्यात्मा, १५ अक्तूबर, १९९२ को ब्रह्म मुहूर्त के समय, ५० वर्ष की अवस्था में, ब्रह्म-लोक के लिये महाप्रयाण कर गयी। यद्यपि, पूज्यपाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज, आज हमारे मध्य नहीं हैं, लेकिन उनकी वेदवाणी, यज्ञों की भूमिका और उनकी प्रवचन-प्रेरणाएँ, सर्वदा-सर्वदा, मानव-मात्र का मार्गदर्शन करती रहेंगी!

- **जो समाज में अच्छाइयों को उत्पन्न नहीं करता, वह समाज का ऋणी है।**
- **जो राजा ऊँचे विचारों को स्वीकार नहीं करता, वह राजा राष्ट्र का ऋणी है।**
- **देवता वह मनुष्य कहलाता है जो दूसरे जीवां की रक्षा करता है।**
- **जब मानव की संकल्प शक्ति ऊँची बन जाती है तो उससे मानव के रोग भी शान्त हो जाते हैं।**
- **प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाले पामर कहलाते हैं।**

५ महाराजा मनु द्वारा सर्वप्रथम राष्ट्र निर्माण

महाराजा मनु से पूर्व करोड़ों वर्षों तक यह संसार बिना राष्ट्र के चलता रहा, क्योंकि सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। जहां कर्त्तव्य का पालन किया जाता है, वहां त्याग और तपस्या होती है। राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता तब होती है जब मानव अपने कर्त्तव्यों से दूर चला जाता है और धर्म का ह्रास होने लगता है। राष्ट्र के नियम धर्म की रक्षा के लिए बनाए जाते हैं। जब तक सब मानव अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिए प्रयत्न करते रहते हैं, उस समय तक राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं होती।

प्रजा को अनुशासन में लाने के लिए तथा धर्म की रक्षा के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है। सर्वप्रथम संसार में महाराजा मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया। इनकी माता का नाम लक्ष्मी और पिता का नाम सोमभामकेतु ऋषि था। मनु महाराज जलचर, थलचर तथा नभचर सभी जीवों पर दया करने वाले थे।

जब महाराजा मनु को वास्तव में प्रतीत हो गया कि अब धर्म पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर आक्रमण होने लगा है, दैत्यों का प्रभाव अधिक होता चला जा रहा है, देवता शून्यता को प्राप्त होते चले जा रहे हैं, तब उन्होंने आदि ऋषियों को एकत्रित किया। महाराजा मनु ने उनसे कहा कि मैं आज वेदां का अध्ययन कर रहा था, तो वहां राष्ट्र का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था कि राष्ट्र का भी नियम होता है। महर्षि तत्ववेत्ता ने कहा, ”मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों में राष्ट्र का विधान है और उस समय में है जब मनुष्य अपने कर्त्तव्यों से विहीन हो जाता है, धर्म से पतित हो जाता है। धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण किया जाता है।“

उस समय मनु जी ने कहा कि मुझे आपकी सहायता प्राप्त होगी तो मैं राष्ट्र का निर्माण अवश्य करूंगा। दैत्यां को नष्ट करने के लिए और दुराचारियों का दुराचार नष्ट करने के लिए राष्ट्र का गठन होना बहुत अनिवार्य है। ऋषियों ने कहा कि आप राष्ट्र का निर्माण अवश्य कीजिए। जो बन सकेगा, हम सहायता करेंगे।

महाराजा मनु ने ऋषियों की सहायता प्राप्त करके सबसे पूर्व वर्ण व्यवस्था स्थापित की। यह वर्ण व्यवस्था आधुनिक काल की तरह जाति प्रथा नहीं थी, अपितु शिक्षालयों में शिक्षा पाने के लिए ब्रह्मचारी जाता, तो आचार्य अपनी दिव्यता से ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी के स्वभाव को जानकर यह निर्धारित करता है कि यह किस वर्ण का है।

यदि कोई बुद्धिमान होता तथा ब्रह्मत्व पर उसकी बुद्धि चलती तो उसको ब्राह्मण की उपाधि देते। जिसकी बुद्धि वाणिज्य में तेज होती, तो उसे वैश्य तथा जो रक्षा करने वाला, अस्त्र-शस्त्र और धनुर्विद्या में रूचि लेने वाला होता तो उसे क्षत्रिय की उपाधि देते। जो इन तीनों में से किसी भी कार्य की, विद्या न पा सके तो उसे शूद्र की उपाधि देते। ये सब गुण, कर्म व स्वभाव द्वारा ही निश्चित किए जाते थे।

ऋषियों ने राष्ट्र के नियम बना दिए। इन नियमों का पालन कराने के लिए किसी राजा तथा राज्य के लिए किसी राजधानी की आवश्यकता अनुभव की गई। महाराजा मनु ने सर्वप्रथम इस शरीर रूपी अयोध्या की नकल करके अयोध्या नगरी का निर्माण किया। इस नगरी के नौ द्वार थे। जैसे नाभि शरीर का केन्द्र है, इसी प्रकार जहां बैठकर राजा न्याय करे वह राष्ट्र का केन्द्र कहलाया। भगवान मनु इस अयोध्या नगरी के प्रथम राजा बने।

राष्ट्र का निर्माण उन व्यक्तियां के लिए किया जाता है जो तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं ताकि वे सच्चे और अच्छे लोगों को कष्ट न दे पाएं। राष्ट्र उसको कहते हैं जहां प्राणिमात्र की रक्षा की जाती हो, गौ व अन्य सभी

दूध देने वाले पशुओं की रक्षा की जाती हो तथा जहां विषैली वायु का शोषण करने वाले प्राणियों की रक्षा की जाती हो। इनकी रक्षा करना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि ये प्राणिमात्र को लाभ देते हैं।

जिस राष्ट्र में एक संस्कृति न हो व एक भाषा न हो, वहां मानवों के विचार कभी भी एकता में नहीं आ सकते। राष्ट्रीयता उसी समय आती है जब प्रजा में प्रीति तथा अपनापन होता है। जब प्रजा अन्न कहीं का ग्रहण करती है, गुणगान कहीं का गाती है, तो वह राष्ट्र नहीं होता। वह तो किसी समय शमशान भूमि बन जाता है।

जिस राष्ट्र में नारी अपने शृंगार को भ्रष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करती है वह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। जिस समाज में सुरापान, मांस-भक्षण और विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है, ऐसा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जब पुत्रियों के नग्न नृत्य कराए जाते हैं, उनको ब्रह्मचारी दृष्टिपात करते हैं तो उनकी प्रवृत्तियां व इन्द्रियां भ्रष्ट हो जाती हैं। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। दूषित होने पर उनके हृदय में कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती। जब कर्त्तव्य की भावना नहीं रहती तो अधिकार-अनाधिकार भी नहीं रहता। जहां अधिकार-अनाधिकार नहीं रहता वहां आलस्य और प्रमाद छा जाता है। आलस्य और प्रमाद आने पर मानव अपने लक्ष्य से दूर चला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव-मानव के रक्त का पिपासु बनकर राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति हो जाती है।

यदि राष्ट्र में द्रव्य (धन) का उचित विभाजन नहीं होता तो उससे पाप अधिक हो जाएंगे। राष्ट्र में एक नियम यह होना चाहिए कि मानव को एक-दूसरे से घृणा नहीं होनी चाहिए। इस प्रभु के राष्ट्र में दूसरों से घृणा करना व अपने को उच्च मानना, यह मानव का दुर्भाग्य ही होता है।

धर्म में सूक्ष्मता हुई तो राष्ट्र की आवश्यकता हुई। धर्म का पालन व कर्त्तव्य का पालन कराने के लिए कठोरता की आवश्यकता हुई। जहां राजा के साथ धर्म नहीं होता, वहां कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है। जहां कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है वहां स्वार्थ होता है। जहां स्वार्थ होता है वहां विनाशिता होती है। जहां विनाशिता होती है वहां अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और संसार विलासिता को प्राप्त हो जाता है।

- **रूढ़ि का पनपना ही राष्ट्र में रक्त का बहना है।**
- **आत्मा जब शरीर में आता है तो नग्न आता है और जब जाता है तो नग्न जाता है।**
- **वेद ईश्वरीय ज्ञान है।**
- **यज्ञ का रस स्वाहा है।**
- **जब आहार पवित्र बनता है तो व्यवहार पवित्र बनता है।**

६ भक्त प्रहलाद

भक्त प्रहलाद राजा हिरण्यकश्यप का पुत्र था। हिरण्यकश्यप ने विज्ञान के आधार पर अपने राष्ट्र को बहुत उन्नत किया था। भौतिक विज्ञान में अधिक उन्नति के कारण उसको विश्वास हो गया था, कि परमात्मा कोई नहीं है, केवल मानव की कल्पना है। उसने कहा कि परमात्मा राजा को कहते हैं और वह "मैं" हूँ। उसने अपने गुरू शौंग से भी कहा था कि 'मेरा हृदय परमात्मा को स्वीकार नहीं करता। मेरे राष्ट्र में सुन्दर मार्ग हैं तथा विभिन्न प्रकार की शालाएं हैं। अतः मैं ही परमात्मा हूँ'।

राष्ट्र में हिरण्यकश्यप ने पठन-पाठन की सुन्दर प्रणाली स्थापित की थी। उसका पुत्र प्रहलाद भी अपने गुरू से शिक्षा पाता था, जो उसके पिता को परमात्मा बतलाता था। एक समय एक कुम्हार से बिल्ली के बच्चे अग्नि में तपने के बावजूद भी सुरक्षित निकल आए। इस घटना को लेकर कुम्हार ने प्रहलाद से कहा कि तुम्हारा पिता अपने को परमात्मा कहता है, उससे पूछो कि ये बिल्ली के बच्चे अग्नि में कैसे जीवित रहे? यह देखकर प्रहलाद के किसी जन्म के धार्मिक संस्कारों का उदय हो गया। उसे परमात्मा में पूर्ण आस्था तथा निष्ठा हो गई। वह समझ गया कि उसका पिता परमात्मा नहीं हो सकता, कोई और ही सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ शक्ति है।

जब गुरू ने उसे पिता का भय दिखाया तो उसने उत्तर दिया कि परमात्मा ने मेरे प्रारब्ध के आधार पर जो निश्चित किया है, उतनी यातनाएं तथा कष्ट उसे अवश्य प्राप्त होंगे।

जब हिरण्यकश्यप को प्रहलाद की विचारधारा के विषय में ज्ञात हुआ तो उसने पत्नी से विचार-विमर्श किया। पत्नी ने कहा कि मैं भी अनुभव करती हूँ कि परमात्मा है, आप नास्तिकवाद के मार्ग पर जा रहे हैं। हिरण्यकश्यप पत्नी के ऐसे वाक्य सुनकर क्रोधित हो गया और अपनी पत्नी से कहा कि मैं तुम्हारे प्राणों का हनन कर सकता हूँ। उसकी पत्नी ने उत्तर दिया कि प्राणों का हनन तो कर सकते हो, किन्तु मेरे अन्तःकरण की चेतना को नष्ट नहीं कर सकते।

यह सुनकर हिरण्यकश्यप लज्जित हो गया और कहा कि तुम्हारी चेतना और तुम्हारे परमात्मा को भी देख लूँगा।

प्रहलाद ने यह जानने का निश्चय कर लिया कि आध्यात्मिक विज्ञान मानव को कहाँ तक उन्नत बना सकता है? उसने नम्रता और निष्ठा प्राप्त कर, अपने संकल्प को उज्ज्वल बना लिया। उसे विश्वास हो गया कि आत्मा चेतन है और उसे अग्नि, वायु अथवा जल नष्ट नहीं कर सकते।

हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र प्रहलाद को नष्ट करने की योजना बना ली। उसने प्रहलाद को कारागार में विषधर सर्पों के बीच रखा। प्रहलाद मन, वचन व कर्म से अहिंसावादी था। उसमें सर्पों के प्रति भी इतना संकल्प तथा 'अहिंसा परमो धर्मः' प्रबल हो गया था कि सर्पों ने उसे डसा ही नहीं। उसने सर्पों से कहा कि हे विषधरों! तुम विष को धारण करने वाले हो तथा मानव को अमृत देने वाले हो। मुझे अमृत दो और मेरे विष का पान करो। यह कह कर उसने एक सर्प को अपने कंठ में धारण कर लिया और कहा कि, "हे आत्मा! तू भी एक आत्मा है और मैं भी एक आत्मा हूँ। तू भी एक चेतना है और मैं भी एक चेतना हूँ। प्रातःकाल होने पर प्रहलाद ने कहा कि हे सर्पराजो! मानव क्रोध तथा काम द्वारा विष उगल कर प्रकृति के परमाणुओं को दूषित करता है, उसी विष को तुम पान करते हो। मुझमें न हिंसा है, न क्रोध है, न वासना है, मैं तो चेतना का भक्त हूँ, उसी चेतना से तुम भी चेतनित हो रहे हो।"

प्रातःकाल हिरण्यकश्यप ने देखा कि प्रहलाद तो परमात्मा का चिन्तन कर रहा है तथा सर्प शान्त हैं। उसे

बहुत आश्चर्य हुआ। उसने अपने सेवकों को आदेश दिया कि प्रहलाद को पर्वतों के ऊपर से नीचे गिरा दो। परन्तु प्रहलाद के निष्ठावान होने के कारण, ब्रह्मचर्य तथा विवेक के कारण व योगाभ्यास के कारण उसका शरीर वज्र के समान हो गया था। अतः पर्वत से गिरने पर भी उसकी मृत्यु न हो सकी।

उसके पश्चात् प्रहलाद को हाथी के पैरों के नीचे कुचलने का प्रयास किया गया, परन्तु प्रयास असफल रहा।

हिरण्यकश्यप की बहन होलिका इतनी वैज्ञानिक थी कि वह सदैव विज्ञानशाला में नाना परमाणुओं का मिलान करती रहती थी। उसने एक ऐसी धातु को जाना था, जिसका शरीर पर लेपन कर लो तो अग्नि में शरीर नहीं जलता था। उसका पुत्र फिरणी नाम का वैज्ञानिक था, उसके द्वारा बनाए गए यंत्रों से ही वह मंगल व चन्द्रमा आदि ग्रहां पर जाती थी। होलिका ने मामनिक ऋषि को चन्द्र मण्डल की यात्रा का वर्णन सुनाया था। उसे भी अभिमान था कि परमात्मा संसार में है ही नहीं। हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र की शत्रुता का वर्णन कर, उसे मृत्यु देने की योजना पूछी। होलिका ने प्रहलाद को अग्नि में जला देने का सुझाव दिया।

जिन औषधियों से होलिका ने अग्नि में न जलने का प्रयोग किया था, उनमें यह विशेषता थी कि यदि कोई दूसरे प्राणी को लेकर अग्नि में प्रविष्ट हो तो औषधियों के परमाणुओं की प्रतिभा दूसरे मानव के शरीर में प्रविष्ट कर जाती थी। इस प्रकार मर्दन करने वाला मानव नष्ट हो जाता था। अतः जब होलिका प्रहलाद को लेकर अग्नि में प्रविष्ट हुई तो वह स्वयं जल गई और प्रहलाद बच गया।

इसके पश्चात् राष्ट्र में दो दल बन गए। एक हिरण्यकश्यप का विचारवादी और दूसरा प्रहलाद का विचारवादी। प्रहलाद के विचारवादियों ने अपने दल का नाम नरसिंह समाज रखा। उन्होंने घोषणा कर दी कि प्रहलाद ही हमारा राजा है, हम उसी को स्वीकार करेंगे। नास्तिक राजा को हम राष्ट्र में नहीं रहने देंगे। इस प्रकार प्रजा में आस्तिकता की तरंगें उत्पन्न होने लगी और नास्तिकता की तरंगें शांत होने लगी। प्रहलाद के दल ने हिरण्यकश्यप को नष्ट करके प्रहलाद को राजा बना दिया। प्रहलाद महान वैज्ञानिक, सुशील तथा आस्तिकवादी राजा था।

- **जहाँ प्रीति नहीं होती, वहाँ धर्म नहीं होता।**
- **द्रव्यपति वह होता है जिसके द्वारा मानवीय जीवन और दर्शन होता है।**
- **आत्मा के प्रकाश से ही हम संसार के प्रकाश को दृष्टिपात करते हैं।**
- **जिस काल में बुद्धिमान अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते हैं, उस काल का नाम राम-राज्य कहा जाता है।**
- **धर्म एक है, सम्प्रदाय अनेक।**

७ माता कौशल्या

कौशल्या कौशल देश के राजा कौशलेश की पुत्री थी। उसने ऋषि तत्वमुनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की। एक समय शिक्षा अध्ययन करते-करते जब कौशल्या दर्शनों का अध्ययन कर रही थी, तो उसके मन में एक विचार आया कि मैं गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करूँगी। कौशल्या ने जब अधिक अध्ययन किया तो एक समय गुरू के द्वार पर पहुँची और चरणां को छूकर बोली कि प्रभु! मेरी इच्छा है कि मैं अपने गर्भस्थल से एक ऊँचे और महान बालक को जन्म देना चाहती हूँ। उस समय गुरू ने कहा कि पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

कौशल्या का यह संकल्प कि वह एक ऐसे महान बालक को जन्म देगी जो संसार से आततायियों का नाश करके धर्म की पताका फहरायेगा। ऋषि-मुनियों में यह चर्चा का विषय बन गया। यह वार्त्ता महाराजा रावण को भी प्रतीत हो गई। अतः रावण ने कौशल देश के राजा से कहा कि अपनी पुत्री हमको अर्पित करो। हम इससे संस्कार तो नहीं करायेंगे, पर इस कन्या को बन्दी बना कर रखेंगे। कौशलेश ने अपनी पुत्री कौशल्या को रावण को दे दिया। रावण ने उस कन्या को समुद्र के मध्य में एक टापू पर दुर्ग बनाकर बन्दी बना दिया।

राजा दशरथ को भी यह भेद पता चल गया। अतः जब वे रानी कैकेयी के साथ कुबेर को युद्ध में परास्त कर लौट रहे थे, तो मार्ग में समुद्र के बीच बने दुर्ग में अपने वाहन से पहुँचे और कौशल्या को रावण के बन्दीगृह से मुक्त कर लिया। अयोध्या लौटने के कुछ समय पश्चात् दशरथ का विवाह संस्कार कौशल्या के साथ हो गया।

सन्तान न होने के कारण राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। तीनां रानियों ने संकल्प किया कि हम यज्ञ करेंगी और जीवन ऊँचा बनायेंगी। माता कौशल्या के गर्भस्थल में जब राम जैसी पुनीत आत्मा का प्रवेश हो गया तो माता कौशल्या प्रतिदिन यज्ञ करती थी।

आत्मा को चेतनित करने के लिए तपस्या करने लगी, क्योंकि माता की यह कामना थी कि मेरे गर्भस्थल से तो याज्ञिक पुत्र होना चाहिए। कौशल्या ने तपस्या में परिणत होकर, अपने जीवन को क्रियात्मक बनाना प्रारम्भ कर दिया। वह प्रातःकाल जब समिधाओं को लेकर के अग्न्याधान करती थी तो कहती थी हे अग्ने! तू प्रकाश है, तेरी ही ज्योति ऊर्ध्वा में रमण करती है, तू सप्त जिह्वा वाली है और प्रत्येक जिह्वा से तू संसार का कल्याण करने वाली है।

मध्य समय (दोपहर) आता तो कला-कौशल करती थी। उसके बदले जो द्रव्य आता था, उससे अपने उदर की पूर्ति किया करती थी। राजा दशरथ ने बहुत कहा कि कौशल्या! राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करो परन्तु माता कौशल्या कहती कि हे राजन्! मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं कर सकती, क्योंकि मैंने अग्नि को साक्षी करके प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने जीवन को तपस्वी बनाऊँगी और मेरे गर्भ से जन्म लेने वाला बालक भी तपस्वी होना चाहिए। यदि मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण करने लगूँगी तो मेरे गर्भस्थल से राजकीय बालक का जन्म होगा, महान बालक का जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि राष्ट्र का अन्न रजोगुण और तमोगुण से सना होता है। राष्ट्रीय अन्न से मेरे मन की प्रवृत्तियों की तरंग उस प्रकार की न बन सवेंळगी जैसी मैं बनाना चाहती हूँ।

जब बाल्य राम गर्भ से पृथक् हो गया तो भी माता कौशल्या प्रातःकाल यज्ञ करती रहती। बालक को लोरियां देती रहती थी और ब्रह्मवर्चोसि का पठन-पाठन चलता रहता। छोटा-सा बालक दृष्टिपात करता रहता। माता अपने जीवन को कितना कर्मठ तथा प्रतिष्ठित बना सकती है? माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को यज्ञ की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी और वह तीन वर्ष का बालक वेदों की ध्वनि गाता था, यज्ञ करता

था और समिधा के द्वारा अग्न्याधान करता था।

भगवान राम ३० वर्ष अध्ययन करने के पश्चात् अयोध्या आ गए। उनके आने के दो माह पश्चात् महर्षि विश्वामित्र भ्रमण करते हुए अयोध्या आ पहुँचे। विश्वामित्र यज्ञ कर रहे थे, जिसे दैत्यजन आते और नष्ट कर जाते थे। वे राम और लक्ष्मण को ले जाकर यज्ञ पूर्ण करना चाहते थे।

राजा दशरथ मोह-ममता में परिणत होकर राम और लक्ष्मण को भेजना नहीं चाहते थे। जब कौशल्या जी ने यह दृष्टिपात किया कि मेरे पतिदेव को मोह आ गया है तो उस समय उन्हांने कहा कि भगवन्! आप मोह क्यों कर रहे हैं? क्या मैंने अपने पुत्र को ऐसे ही दिवस के लिए जन्म दिया है? यदि मेरा पुत्र ऋषि के यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकता, तो मेरा गर्भस्थल व्यर्थ हो जाएगा। मेरा जीवन उसी काल में ऊर्ध्व बनेगा, जब राम ऋषि के यज्ञ को पूर्ण करायेगा। मैंने अपने पुत्र को त्याग और तपस्या से जन्म दिया है। राम और लक्ष्मण दोनों महर्षि विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा करने के लिए वन चले गए।

अयोध्या के भयंकर वन में ऋषियों की एक सभा हुई, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि राम को वनवास होना चाहिए, इसमें माता कैकेयी का दोष नहीं था, यह ऋषि-मुनियां की आज्ञा थी। जिस दिन राम को वन के लिए प्रस्थान करना था उसी दिन महर्षि वशिष्ठ कौशल्या को, कुछ उच्चारण करके अपने आश्रम में चले गए। राम कैकेयी और सुमित्रा को प्रणाम करके कौशल्या के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या के चरणां को स्पर्श किया। कौशल्या अति हर्षित हो रही थी क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राम राजसी विचारों में पनपता रहे। वह जानती थी कि राजा दशरथ ने अपने स्वार्थ के लिए वेद की परम्परा को नष्ट कर दिया है। तीन विवाह संस्कार कराना वैदिक परम्परा के अनुरूप नहीं है।

माता कौशल्या कहती है, धन्य है पुत्र! जाओ, तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज के दिवस के लिए मैंने तुम्हें अपनी लोरियां का पान कराया था। आज का दिवस मेरे लिए शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है और मग्न हो रहा है। इतने में ही सीता ने आकर कहा कि हे मातेश्वरी! मुझे भी वन जाने की आज्ञा दो। माता कौशल्या ने कहा कि पुत्री! मैं तुम्हें विडम्बना में नहीं ले जाना चाहती हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा है और वन में जीवन व्यतीत कर सकती हो, तो तुम भी जाओ और वन में पति के साथ रहो, उसकी सेवा करो और उसकी आज्ञा का पालन करो।

- **अन्तःकरण और वाणी में नम्रता हो, यही धर्म का सबसे बड़ा लक्षण है।**
- **सत्य को सत्य मानने या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।**

८ भगवान श्रीरामचन्द्र

माता कौशल्या ने महर्षि तत्त्व मुनि के आश्रम में अध्ययन करते हुए यह संकल्प किया था कि वह ऐसे महान बालक को जन्म देगी, जो संसार से आततताईयों का नाश करके, धर्म की पताका फहराएगा। पुत्रेष्टि-यज्ञ के पश्चात् माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गई। गर्भ की स्थापना हो जाने के पश्चात् माता कौशल्या का यही नियम था कि वह स्वयं कला-कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता, उससे अन्न ग्रहण करके सन्तुष्ट रहती थी। राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करती थी। वह प्रतिदिन यज्ञ करती थी और तपस्या में लीन रहती थी।

भगवान श्रीरामचन्द्र जी का जन्म होने के पश्चात् माता कौशल्या बालक को लोरियाँ देती रहती थी और वेदां का गान गाती और उनका पठन-पाठन चलता रहता। माता यज्ञ करती रहती और बालक दृष्टिपात करता रहता। माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को यज्ञ की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी। तीन वर्ष की आयु का बालक वेदों की ध्वनि गाता था और समिधाओं का चयन करके यज्ञ करता था।

भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने शिक्षा अध्ययन के तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों में उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं और शिष्टाचार में परिणत कराया। द्वितीय दस वर्षों में विद्याध्ययन और धनुर्विद्या तथा अन्तिम दस वर्षों में विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन। पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है। जो पृथ्वी वज्र के तुल्य हो, वह अहिल्या कहलाई जाती है। ऐसी भूमि में अन्न और वनस्पति उत्पन्न नहीं होती। भगवान राम एक समय अहिल्या पर अध्ययन कर रहे थे तो विज्ञानशाला में महर्षि भारद्वाज का पदार्पण हुआ।

महर्षि भारद्वाज ने एक ऐसा यन्त्र जाना था जो पृथ्वी की परतों में, चाहे वे जलाशयों अथवा समुद्र की तरंगों में भी क्यों न हों, दस-दस योजन तक यह भास करा देता था कि अमुक स्थान पर अमुक धातु है। उन्होंने राम को अपनी विज्ञानशाला में ले जाकर उस यन्त्र का दिग्दर्शन कराया। भगवान राम छः मास तक महर्षि वशिष्ठ के आश्रम को त्यागकर महर्षि भारद्वाज के यहाँ उस विद्या का अध्ययन करते रहे। वे मन और प्राण की सन्धि करके पृथ्वी के गर्भ में जाते थे और उसको भली-भांति जान लेते थे। भगवान राम अहिल्या का उद्धार करने वाले कहलाते थे।

भगवान राम प्रतिदिन लगभग एक सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। वह जाप शब्दों में नहीं अपितु मस्तिष्क में करते थे। उनका जीवन ऋषि जीवन था और उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न थी।

एक समय राम ने मार्ग में एक कीड़े को क्रीड़ा करते देखकर महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया कि महाराज! इस कीड़े ने क्या कर्म किया था जो यह कीड़ा बना हुआ है? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि जब से यह सृष्टि आरम्भ हुई, यह कीड़ा तीन समय इन्द्र बना है। इन्द्र उसको कहते हैं जो राजा एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ कर लेता है। यह नाना प्रकार के पाप करके आज अधोगति को प्राप्त हुआ है और अब इसे कीड़े की योनि प्राप्त हो गई है।

भगवान राम का ३५ वर्ष की आयु में माता सीता के साथ विवाह संस्कार हुआ था। वे १२ कलाओं में पारंगत थे। महान और सदाचारी थे। उनके लिए राष्ट्र का ऐश्वर्य और पर्वतां की शैय्या दोनों समान थी।

एक समय अयोध्या के भयंकर वन में महर्षि विभाण्डक मुनि के आश्रम में एक सभा हुई, जिसकी अध्यक्षता महाराजा शिव ने की। नाना ऋषि सभा में विद्यमान थे। उस सभा में यह विचार विनिमय हुआ कि हम रावण के आततायीपन को कैसे समाप्त कर सकते हैं?

ऋषि-मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र से यह कहा कि तुम राम और लक्ष्मण को धनुर्याग से महान बनाओ। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि मेरी विज्ञानशाला में जितने भी वरूणास्त्र हैं, और इन्द्रास्त्र हैं, इस कोष को राम को प्रदान कर सकता हूँ। महाराजा शिव ने कहा मैंने राजा रावण को भिन्न-भिन्न प्रकार की विज्ञान की शिक्षाएँ दी, परन्तु आज मेरा मन्तव्य बन गया है कि मैं रावण को कोई सहायता प्रदान नहीं करूँगा, क्योंकि उसका जीवन आततायी बन गया है। उसके राष्ट्र के प्रति मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। सभा में यह विचार-विनिमय निश्चित हो गया कि राजा रावण साधारण मानव को त्रासित कर रहा है, वह समाप्त होना चाहिए।

महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अयोध्या से लाकर वन में धनुर्याग किया। जब याग समाप्त हो गया, तो राम और लक्ष्मण ने अस्त्र-शस्त्र लेकर ऋषि का स्वागत किया। इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण तीनां गमन कर, महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में जा पहुँचे। उन्होंने तीनों का स्वागत किया और महर्षि विश्वामित्र से कहा कि कहो भगवन्! मेरे लिए क्या सेवा है? आपकी क्या आज्ञा है? महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि इन दोनों को योग और विज्ञान में पारंगत कीजिए। दोनों भाई छः मास तक उस विज्ञानशाला में योग और विज्ञान की शिक्षा लेते रहे।

राम को महान बनाने के लिए महापुरुषों ने बहुत यत्न किया। सम्प्रदाय और रूढ़ि वैसे ही समाप्त नहीं होते। उस काल में समाप्त होते हैं जब मानव त्याग और तपस्या में परिणत हो जाता है। राम और लक्ष्मण दोनों राजकुमारों ने रघुवंश को ऊँचा बनाने के लिए महर्षि भारद्वाज के आश्रम में सर्वविद्याएं प्राप्त की।

कुछ समय के पश्चात् राजा दशरथ महर्षि वशिष्ठ के द्वार पर पहुँचे और कहा कि मेरा चौथापन आ गया है, मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को यह राष्ट्र अर्पित करना चाहता हूँ।

इससे पूर्व अयोध्या में एक सभा हो गई थी, जिसमें सभी ऋषि-मुनियां ने यह निर्णय किया था, कि राम को वनों में जाना है और आतताईयों को नष्ट करना है। अतः उसी दिन ऋषि-मुनि, ब्रह्मचारीगण और नाना विदुषी देवियां एकत्रित हुए। यह निर्णय होने लगा कि राज्य में ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ऊँचा है या राजसभाओं का। यह निर्णय हुआ कि ब्रह्मवेत्ताओं का निर्णय ही ऊँचा होता है, क्योंकि उनके विचार तपे हुए होते हैं व सर्व अनुभव किया होता है।

अगला दिवस हुआ तो अयोध्या में मग्नता हो रही थी। राजगृहां में गान गाए जा रहे थे व सर्वत्र राष्ट्र में नाना प्रकार के आनन्द हो रहे थे। रात्रि में अश्रेतु ऋषि महाराज, जो महर्षि वशिष्ठ के शिष्य कहलाते थे, मन्थरा के द्वार पर पहुंचे। मन्थरा अयोध्या राष्ट्र में गुप्तचर विभाग की अध्यक्षा थी। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ द्वारा लिखित एक पत्र मन्थरा को दिया और कहा इसे महारानी केकैयी को दे देना। मन्थरा ने वह पत्र केकैयी को प्रेषित कर दिया। केकैयी पत्र पढ़कर राजतिलक का विरोध करने लगी और कोपभवन में विद्यमान हो गई।

राजा दशरथ को जब यह प्रतीत हुआ तो वे शोक भवन में पहुंचे। मध्यरात्रि थी, उन्होंने कहा कि देवी! तुम्हें यह क्या हो गया है? तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई है? राम को वन देना तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है क्योंकि तुम राम की ममतामयी हो। महारानी केकैयी ने कहा कि जहां कर्त्तव्य की भावना आती है तो वहां ममता समाप्त हो जाती है। मेरी अन्तर्भावना यह है कि राम को वन में जाना चाहिए।

यह सर्व वार्त्ता राम को प्रतीत हो गई कि मुझे वन जाना है। राम तपे हुए थे। कुछ तो माता के गर्भस्थल में तपे, कुछ माता की लोरियों में तपे, कुछ महर्षि वशिष्ठ व महर्षि विश्वामित्र के आश्रमों में तपे और कुछ महर्षि भारद्वाज के द्वारा तपे थे। कौशल्या जी भी यह कहती रहती थी कि हे बालक! तूने मेरे गर्भस्थल से जन्म पाया

है, तो तेरा कर्त्तव्य है कि तू महापुरुष बनना। तुझे दैत्यों का हनन करना है व महापुरुषों की सेवा करनी है। माता के हृदय के उद्गार बालक के अन्तःकरण में ओत-प्रोत हो गए थे।

राम का हृदय तपा हुआ था। राम जन्म-जन्मान्तरों से महापुरुष होते चले आए थे। वह दिव्य आत्मा वाले कहलाते थे। राम ने कोप भवन में जाकर माता केकैयी के चरणों को स्पर्श किया। केकैयी ने कहा, धन्य हो पुत्र! आज तुम मेरे द्वार आये हो, मेरी इच्छा है कि तुम चौदह वर्ष के लिए वन चले जाओ। राम ने कहा कि मेरी तो यह कामना रहती है मातेश्वरी! कि मुझे माताओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि मैं माता की आज्ञा का पालन नहीं करूंगा, तो मेरे पुत्र होने का अस्तित्व ही क्या है?

राम पिता के द्वार पर पहुँचे और कहा कि माता की आज्ञा का पालन करना तो पुत्र का कर्त्तव्य होता है। आप मुझे कर्त्तव्य से दूर क्यों ले जा रहे हो, आप शोकाकुल क्यों हो रहे हो व ममत्व में क्यां आ रहे हो? आप अपने मन में यह न स्वीकार करें कि 'राम' कौशल्या का ही पुत्र है। यदि माता केकैयी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ होता तो भी माता केकैयी मुझे वन जाने के लिए विवश कर देती। राजा दशरथ राम को अपने हृदय से आलिंगन करते हुए बोले कि हे पुत्र! मेरा हृदय नहीं चाहता कि तुम वन जाओ। राम का हृदय मोहवश नहीं हुआ। वह एक रस रहने वाली महान आत्मा थी।

कौशल्या जी को महर्षि वशिष्ठ कुछ उच्चारण करके पहले ही अपने आश्रम में चले गए थे। केकैयी व सुमित्रा को प्रणाम करके राम कौशल्या के द्वार पर पहुँचे। माता कौशल्या अति हर्षित हो रही थी, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राम राजसी विचारों में पनपता रहे। माता ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम चौदह वर्ष माता की आज्ञा का पालन करो। आज का दिवस मेरे लिए शोभनीय है। आज मेरा पुत्र शोक से रहित है व मग्न हो रहा है। राम, लक्ष्मण और सीता ने राजसी वस्त्र त्याग दिये और भगवां वस्त्र धारण करके अयोध्या को त्याग दिया। तीनों सरयू नदी को पार करके भयंकर वनों में पर्वतों की शैय्या बनाने वाले बन गए।

राम, लक्ष्मण और सीता सबसे पूर्व राजा निषाद के राष्ट्र में पहुँचे। निषाद ने कहा कि भगवन्! आप राज्य त्याग करके वन को क्यां जा रहे हो? उस समय राम ने कहा था कि हे निषाद! सूक्ष्म-सा जीवन है और इस जीवन को ऊँचा बनाने के लिए संसार में आए हैं। वन में रहेंगे तो कुछ पायेंगे और राष्ट्र में रहेंगे तो अपनी निज सम्पत्ति खो बैठेंगे। संसार में जो भी मानव ऊँचा बना है, दार्शनिक, आत्मिक और वेदपाठी बना है, वह वन में रहने से बना है। वन में रहूँगा तो मेरा जीवन महान बनेगा, यौगिक बनेगा और संसार से इस जीवन में कुछ कमाकर ले जाऊँगा। यदि मैं राजा बन जाता तो राष्ट्र बुद्धि हो जाती और न प्रतीत कितने पाप करने लग जाता? मैं वन को भोग कर, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके और मर्यादा को बांध करके, जहां से आया हूँ वहीं चला जाऊंगा।

राजा दशरथ ने जिन भीलों, द्रविड़ों और अपंगों को त्याग दिया था, भगवान राम ने उन्हीं को अपनाया। उनकी सेना बनाई। वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। आगे चले तो जो पिशाच और दुराचारी थे उन्हें नाना प्रकार के यन्त्रों से नष्ट करते चले गए। उसके बाद बाली को नष्ट किया, जो चारों वेदां का पंडित था, परन्तु संस्कृति नष्ट कर चुका था। बाली ने अपने बड़े विधाता की पत्नी को अपने गृह में प्रविष्ट कर लिया था। पवनपुत्र हनुमान और सुग्रीव को अपनाया। शबरी कुरतुक ऋषि की कन्या थी और विज्ञान में प्रवीण थी। उसने भारद्वाज ऋषि के आश्रम में शिक्षा अर्जित की थी। उसने, जितना विज्ञान का कोष था, सब राम को प्रदान कर दिया था। एक समय भगवान राम भ्रमण करते हुए माता अनुसूया के आश्रम में पहुँचे। उसने सीता को उपदेश दिया और

राम को एक यन्त्र दिया जिसका नाम 'जलायस्त्राण' था। यह यन्त्र अग्नि के परमाणुओं को निगल जाता था।

भगवान राम से वन में महर्षि कागकृष्ण (काग भुशुण्ड) मिले जो आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ना भी जानते थे। प्राणविद्या में पारंगत बाली पुत्र अंगद और वैज्ञानिक राजा जामवन्त से मिले। इस प्रकार अनेक ऋषि-मुनि और महापुरुषों को भी अपने साथ सम्मिलित कर लिया।

रावण की बहन का नाम सोमतिती (सूर्पणखा) था। वह दण्डक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने पहले राम और फिर लक्ष्मण के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। दोनों ने कहा हम तुमसे संस्कार नहीं कर पाएंगे। जब ऐसा कहा तो उसने अपमान समझा, क्योंकि उसे अपने विधाता रावण और राष्ट्र का गर्व था। अपमान होने से उसने अपनी नाक स्वयं काट ली। उसने षडयन्त्र रचा ताकि मेरे कुटुम्ब वाले मेरे अपमान को जानकर दोनों भाइयों को नष्ट कर देंगे। वेदों में कुछ मन्त्र आते हैं जिनके अनुसार देवकन्या को जिस वस्तु की हठ हो जाए अथवा जो कार्य इसके लिए असम्भव हो जाए तो वह स्वतः ऐसे कार्य कर लेती है।

इसी अपमान का बदला लेने के लिए रावण सीता जी को पंचवटी से उठा ले गया। राम ने रावण को नष्ट करके उसके भाई विभीषण को लंका का राजा बनाया। रावण के पुत्र नारायन्तक जो सोमभूम (रूस) नाम के राष्ट्र में राज्य करते थे, उसे नष्ट करके अद्युत नाम के राजा को वहां का राज्य देकर वैदिक संस्कृति का प्रसार किया। उसके उपरान्त पातालपुरी पहुंचे, वहां रावण का पुत्र अहिरावण राज्य करता था, उसे नष्ट करके पातालपुरी (अमेरिका) का राज्य हनुमान के पुत्र मकरध्वज को दे दिया। रावण का पुत्र अक्षय कुमार रोहिणी (चीन) राष्ट्र पर राज्य करता था। उसे नष्ट किया। रावण का चतुर्थ पुत्र मेघनाथ जो त्रिपुरी (काबुल व गन्धार) पर राज्य करता था उसे भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार वैदिक संस्कृति का सारे विश्व में प्रसार करके राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान अयोध्या लौट आए।

अयोध्या में आकर राम महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत हो गए। वहीं महर्षि विश्वामित्र भी आ गए। दोनों महापुरुषों के चरणों को छू कर राम ने कहा, "भगवन! अब आप मुझे कोई ऐसा निश्चित मार्ग दीजिए जिससे मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकूँ। अपने राष्ट्र को सदाचार के मार्ग पर ले जा सकूँ।" ऋषियों ने राम को उत्तम-उत्तम शिक्षाएं दी।

राम का दीपावली के दिन राज्याभिषेक किया गया। उन्होंने राम-राज्य स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय नियम बनाये। सबसे प्रथम नियम बनाया कि प्रत्येक गृह में यज्ञ होना चाहिए और सुगन्धि होनी चाहिए। प्रत्येक मानव में सदाचार और मानवता होनी चाहिए। द्वितीय नियम यह बनाया कि राष्ट्र में किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए।

राम के आदेश पर गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेजा गया, जो नदी तट पर था। स्वच्छ वायुमण्डल में विवेकी बालक लव का जन्म हुआ था। कुश नाम का बालक सीता जी को आश्रम के निकट कुशा के आसन पर रखा हुआ मिला था। दोनों बालक आश्रम में रहते हुए आयुर्वेद और अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत हो गए।

भगवान राम ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए, प्रचलन के अनुसार घोड़ा छोड़ दिया। घोड़े को किसी ने अंकित नहीं किया, परन्तु लव और कुश ने पकड़ लिया। वीर हनुमान और लक्ष्मण दोनों भ्रमण करते हुए आश्रम में आए। दोनों ने माता सीता से अयोध्या चलने की प्रार्थना की। दोनों बालक और माता सीता अयोध्या आ गए। सब ने राम के चरणों को स्पर्श किया। अश्वमेध यज्ञ में राम और सीता दोनों यजमान बने। यज्ञ समाप्ति के

पश्चात् सातवें दिवस माता सीता ने प्राणायाम करके शरीर त्याग दिया। उसके सात दिवस पश्चात् भगवान राम ने भी प्राणायाम करके अपने शरीर को त्याग दिया।

- **अपनी प्रवृत्तियों पर संयम करने को विवेक कहते हैं।**
- **मानव में ज्ञान और विवेक का अभाव ही अन्धकार कहलाता है।**
- **अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश कहते हैं।**
- **मानव का जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है।**
- **जब द्रव्य का दुरुपयोग होता है तो यह द्रव्य उसी मानव के पुण्य को निगल जाता है।**

९ माता सीता

एक समय राजा जनक के राष्ट्र में अकाल पड़ गया। नाना ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। अनेक ऋषि उनके आंगन में आये। राजा जनक ने कहा कि मेरी प्रजा अन्नाभाव से दुखी है, कुछ ऐसा यत्न करो ताकि अकाल समाप्त हो जाए। ऋषियों ने कहा कि आप दो गो के बछड़े लीजिए और अपनी वाटिका में जाकर स्वर्ण का हल चलाइये, ताकि वृष्टि याग हेतु स्थान सुरम्य बने। राजा जनक ने ऐसा ही किया, वृष्टि हो गई। संयोग वश जैसे ही राजा ने हल चलाया, वृष्टि हुई और उधर राजा जनक के घर कन्या का जन्म हुआ।

जब राजा को कन्या उत्पन्न होने का समाचार मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋषि-मुनियों से नाम करण संस्कार का आग्रह किया। ऋषि-मुनियों ने कहा कि इसका 'सीता' नाम नियुक्त कर दो, क्योंकि व्याकरण की दृष्टि में 'सी' नाम हल की फाली का व 'ता' नाम वृष्टि का है। हल चलाने के साथ ही वृष्टि हुई है व वृष्टि के होते ही पुत्री उत्पन्न हुई है। दोनों के मिलन समय जन्म हुआ है तो उस समय उसका नाम सीता नियुक्त कर दिया गया।

सीता राज-पुरोहित स्वाति मुनि महाराज के द्वारा वेदों व धनुर्विद्या का अध्ययन करती थी। उसका विवाह संस्कार भगवान राम के साथ हुआ। माता कौशल्या की आज्ञा लेकर राम के साथ वन में गई। लक्ष्मण भी साथ गया। एक समय रात्रि छा गई। राम व लक्ष्मण पर्वतों की शैय्या बनाए विश्राम कर रहे थे। सीता जाग रही थी। वहां पर अचानक ही सिंह आ गया। सीता ने सोचा कि मैं राम की पत्नी हूँ, उन्हें जागरूक करना मेरा धर्म नहीं है। यदि लक्ष्मण को जागरूक किया तो वह पुत्र के तुल्य है। उसने विचारा जो गाढ़ निद्रा में परिणत हो, उसे जागरूक नहीं करना चाहिए। अतः सीता देवत्व की भावना से कहती है कि हे मृगराज! यह मैं जानती हूँ कि हम तुम्हारे गृह में विद्यमान है। यह जो वन है, यह तेरा गृह है, परन्तु यह भी तेरा कर्त्तव्य नहीं कि तू अपने गृह में आये अतिथियों को ही अपना आहार बना ले, यह तेरा सिंहपन नहीं है।

इस प्रकार सीता ने हृदय, इन्द्रियों और मन के समन्वय के साथ तन्मयी प्रार्थना की, वह मृगराज के अन्तःकरण को प्रभावित कर गई। सिंहराज ने उस मार्ग को त्यागकर दूसरे मार्ग को अपना लिया। माता सीता बहुत संकल्पमयी थी।

लक्ष्मण माता सीता के चरणों को स्पर्श करने वाला यथार्थ आर्य था। उसके जीवन की इतनी महत्ता मिलती है कि उसकी दृष्टि किसी और स्थल पर नहीं जाती थी। जब पंचवटी पर रावण आ पहुंचा तो लक्ष्मण ने पंचवटी के इर्दगिर्द (चारों ओर) एक रेखा का निर्माण किया और सीता से यह कहा कि हे मातेश्वरी! इस रेखा से तुम बाहर नहीं होना। कितना विज्ञान था उस समय का? उस विज्ञान की हम कल्पना भी नहीं कर पाते। जो आंगन में रहे, वह भस्म न होता हो परन्तु बाहर से आने वाला प्राणी उस रेखा के अन्तर्गत आते ही भस्म हो जाता था, उसमें इतनी विशालता थी। इस श्रृंगकेतु नाम की रेखा को श्रीकृष्ण जी भी जानते थे।

रावण अपनी बहन सोमतिती के अपमान का बदला लेने के लिए माता सीता को लंका ले गया। रावण का राष्ट्र अपना, प्रजा अपनी परन्तु सीता को अपना नहीं बना सके, क्योंकि माता सीता महान चरित्रवान थी। उसका हृदय वैदिकता से गुथा हुआ था। वह ऐसा सुन्दर गुथा हुआ था कि रावण उसे छू भी नहीं सकता था। माता सीता ने कहा था कि हे रावण! मैं पतिव्रता हूँ और मेरा एक पति है। यदि तुमने पाप से मेरे शरीर को छू भी लिया तो अनिष्ट हो जायेगा। रावण में इतनी प्रबलता नहीं थी कि वह माता सीता को छू भी सके। उसके हृदय में कैसी महत्ता थी?

रावण पर विजय करके राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या आ गए। दीपावली के दिन अयोध्या में एक भव्य सभा हुई जिसमें राम का राज्याभिषेक किया गया। लगभग एक वर्ष पश्चात् जब राम ने यह विचारा कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आओ, क्योंकि वहां नदी का तट है, वहीं स्वच्छ वायुमण्डल में बालक का जन्म होगा तो राष्ट्र का कल्याण होगा। लक्ष्मण सीता को लेकर वाल्मीकि आश्रम में गया। वाल्मीकि ऋषि आयुर्वेद के महान पण्डित थे और सीता को आयुर्वेद की औषधियों का पान कराते रहते थे।

वाल्मीकि आश्रम में सीता के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म के पश्चात् बड़े आनन्द से ऋषि आश्रम में रहता था। ऋषि उस बालक को लव के नाम से पुकारने लगे। कुछ समय के पश्चात् एक दिवस जब सीता जल लेने नदी तट पर गई तो उसे आश्रम के निकट एक बालक कुशा पर रखा हुआ मिला। इस बालक का नाम कुश रख दिया गया। यह बालक महर्षि सुरन्धित की कन्या सुमित्रा और ब्रह्मचारी ब्रहित की सन्तान था। सुमित्रा ने बालक को कुशा के आसन पर विराजमान करके वाल्मीकि आश्रम के निकट त्याग दिया था।

माता सीता ने दोनों पुत्रों का पालन किया। उसने कुश को भी कण्ठ लगाया। वह एक लोरी लव को और एक कुश को देने लगी। ये दोनों बालक ऋषि की सेवा करते थे। महर्षि वाल्मीकि ने दोनों को अस्त्र-शस्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा में पारंगत कर दिया। सीता स्वयं भी आयुर्वेद तथा धनुर्विद्या के मर्म को जानने वाली विदुषी थी।

वाल्मीकि आश्रम में दोनों बालक युवा हो गए। जब महाराजा राम ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ा तो उसको किसी ने नहीं पकड़ा, परन्तु उन दोनों पुत्रों ने पकड़ लिया। माता सीता ने कहा कि यह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा है, मेरे स्वामी का यह अश्व है और महर्षि वाल्मीकि के लिए निमन्त्रण आया है। इतने में भगवान राम के महामन्त्री हनुमान और लक्ष्मण दोनों भ्रमण करते हुए महर्षि के आश्रम में आ गए।

दोनों ने माता सीता से प्रार्थना की कि हे मां! अब तू राष्ट्रगृह में चल। तू राजलक्ष्मी है। हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया है क्योंकि जब यह बालक तुम्हारे गर्भ में था तो तुम्हारे हृदय का एक भाग रूग्ण हो गया था। महर्षि वाल्मीकि आश्रम में तुम्हारा रोग शान्त करने के लिए छोड़ा गया था जो अब पूर्ण रूपेण शान्त हो गया है। अब तू राष्ट्रगृह में प्रविष्ट हो। माता सीता ने इन वाक्यों को स्वीकार कर लिया।

महामन्त्री हनुमान, लक्ष्मण, माता सीता और दोनों बालक अयोध्या आ गए। सीता ने राम के चरणों को स्पर्श किया। अश्वमेध यज्ञ में राम और सीता दोनों यज्ञमान बने और यज्ञ पूर्ण हो गया।

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होने के पश्चात् माता सीता ने भगवान राम से कहा "हे भगवान! अब तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो गया है। मैंने पुत्रेष्टि यज्ञ भी पूर्ण कर लिया। अब मुझे यह भान हो रहा है कि आज से सातवें दिवस मेरी मृत्यु हो जायेगी।" उसने यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् सातवें दिन शरीर त्याग दिया। उसके सातवें दिवस पश्चात् भगवान राम ने शरीर त्याग दिया। उन्होंने अपने-अपने शरीर को स्थूलता से प्राणायाम के द्वारा त्याग दिया।

विचार विनिमय यह कि सीता पृथ्वी में समाहित नहीं हुई। दोनों धर्मात्मा थे। उन्हें पृथ्वी में समाहित होने की क्या आवश्यकता थी? पृथ्वी में समाहित होना आत्महत्या मानी जाती है और शास्त्रों में आत्महत्या पाप है।

- **राष्ट्र का सबसे बड़ा भूषण सदाचार है।**
- **राष्ट्र का निर्माण धर्म की रक्षा करने के लिए किया जाता है।**

- जब मानव का पुण्य उदय होता है तो मानव का विकास होता चला
- जाता है।
- जब मानव के समक्ष पाप आता है तो वह अधोगति में चला जाता है।
- जहाँ कर्त्तव्य में सूक्ष्मता होती है, वहाँ स्वार्थ होता है।
- जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ विनाशिता होती है और जहाँ विनाशिता होती है वहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

१०विष्णु से रामराज्य

एक समय भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न किया कि भगवन्! मेरा राष्ट्र राम-राज्य कैसे बन सकता है?

महर्षि वशिष्ठ बोले, ”हे राम! इस राष्ट्र को राम-राज्य बनाने से पूर्व तुम्हें विष्णु बनना है और उस राजा को विष्णु कहते हैं, जिस राजा के यहां चार भुज (चिन्ह) होते हैं। एक भुज में पद्म, द्वितीय में गदा, तृतीय में चक्र और चतुर्थ में शंख। जब तक तुम स्वयं विष्णु नहीं बनोगे, तुम्हारा राष्ट्र राम-राज्य नहीं हो सकेगा।“ भगवान राम बोले, ”प्रभु! मुझे चारों भुजों के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।

महर्षि वशिष्ठ बोले, ”सब से प्रथम तुम्हारे भुजों में पद्म होना चाहिए। पद्म नाम है सदाचार और शिष्टाचार का, जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार और शिष्टाचार होता है, उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है। जिस राष्ट्र में सदाचार और शिष्टाचार नहीं होता, हृदय में एक दूसरे का सम्मान नहीं होता, तो जानो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जायेगा। राष्ट्र में यथार्थ विद्या होनी चाहिए। जिस विद्या में सदाचार और शिष्टाचार की तरंगे हों, वह विद्या सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐसी विद्या राष्ट्र को सफल बना देती है। यह पद्म राष्ट्र को ऊँचे से ऊँचे बना सकता है। सारे संसार पर तुम शासन कर सकते हो। यदि सदाचार और शिष्टाचार नहीं तो तुम्हारा राष्ट्र राम-राज्य किसी भी प्रकार नहीं बन सकता।

द्वितीय तुम्हारे राष्ट्र में गदा होनी चाहिए। मग्न होते हुए ऋषि बोले, गदा नाम है क्षत्रियों का, राष्ट्र में बलवान क्षत्रिय होने चाहिए। उन्हें अपनी आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। उनका ब्रह्मचर्य पौष्टिक होना चाहिए। जिस राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड दिया जाता है, वह राष्ट्र सदैव राम-राज्य बन कर रहता है। जिस राष्ट्र में अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाता, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जाएगा। तुम्हें गदा को स्थिर करना है, अपराधी को दंड देना है और दुराचार को नहीं रहने देना है। तुम्हारे राष्ट्र में पद्म और गदा मुख्य रूप से रहने चाहिए। यदि तुम्हारे राष्ट्र की कोई वार्त्ता किसी द्वितीय राष्ट्र में पहुँच जाती है तो जानो राष्ट्र के क्षत्रिय ऊँचे नहीं हैं।

तृतीय भुजा के रूप में चक्र होना चाहिए। चक्र नाम है संस्कृति का, जिस राष्ट्र में संस्कृति होती है, उस राष्ट्र में चक्र होता है। संस्कृति वह अमूल्य वाणी है जो मानव को सदाचार और शिष्टाचार देने वाली है। जो संस्कृति कृषि करने में, व्यापार में, धनुर्विद्या में, नाना प्रकार के यन्त्रों के आविष्कार में, सदाचार में, ब्रह्मचर्य की सुरक्षा करने में, अपनी आत्मा की उन्नति करने में और परमात्मा तक पहुंचने में मार्ग दर्शक हो, ऐसी संस्कृति जिस वाणी में ओत-प्रोत हो, उस वाणी का नाम संस्कृति है।

भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि भगवान! मुझे शंख का निर्णय और करा दीजिए, मैं शंख को और जानना चाहता हूँ। महर्षि वशिष्ठ बोले, ”हे राम! तुम कितने उत्तम हो, संसार में तुम्हारा बड़ा यश है। तुम धन्य हो जो मेरे आदेशों का पालन करने को तैयार हो। शंख नाम है वेद-ध्वनि का, जिस राष्ट्र में वेद-ध्वनि होती है, नाना प्रकार के स्वरों में वेदों का पाठ गाया जाता है, उस राष्ट्र में अन्तरिक्ष भी वेद-मन्त्रों से आच्छादित रहता है। जिस राष्ट्र में वेदों की शिक्षा दी जाती हो, वहां का वातावरण भी उत्तम होता है और मानवों की विचारधाराएं भी ऊँची होती है। वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही परमात्मा ने वेदों का ज्ञान सभी मानवों के लिए दिया है। जिस राष्ट्र में यज्ञ होते हैं और यज्ञों में वेदों का पाठ होता है तो उस राष्ट्र में राजा तथा प्रजा आपस में प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं।“

जिस राजा के भुजों में ये चार चिन्ह होते हैं अथवा चार नियम होते हैं, वह राष्ट्र राम-राज्य कहलाता है। ऐसे राष्ट्र के राजा को विष्णु की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पराकष्ठा पर हो व गरूड़ वाहन हो, उसे विष्णु कहते हैं। गरूड़ नामक वायुयान पर विराजमान होकर जो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वाला हो, उसे विष्णु कहते हैं। गरूड़ नाम का पक्षी भी होता है।

११भगवान राम का अजय-मेध यज्ञ

विभीषण ने अपने भ्राता रावण द्वारा ठुकराए जाने के पश्चात् भगवान राम की शरण ले ली और आनन्दपूर्वक रहने लगा। कुछ दिनों के पश्चात् राम ने विभीषण से कहा कि आप रावण के भाई हैं, मैं रावण से संग्राम करने जा रहा हूँ, क्या मैं उस पर विजय पा सकूंगा?

विभीषण ने कहा कि जब तक आप अजय-मेध यज्ञ नहीं करेंगे और यज्ञ का ब्रह्मा रावण को नहीं बनायेंगे, तब तक आप विजय प्राप्त नहीं कर सकोगे। राम ने कहा हे विधाता! यह कैसे सम्भव होगा? मेरा शत्रु मेरे समक्ष कैसे आयेगा? विभीषण ने कहा, "रावण चारों वेदों का पंडित है। यदि तुम निमन्त्रण देने जाओगे तो वह अवश्य तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण करेगा।"

यज्ञ की सब सामग्री जुट जाने के पश्चात् राम और लक्ष्मण ने रावण को निमन्त्रण देने की योजना बनाई। दोनों भाई समुद्र पार करके रावण के दरबार में जा पहुंचे। उस समय रावण न्याय कर रहा था। रावण ने इससे पूर्व राम और लक्ष्मण को नहीं देखा था, इसलिए रावण को उनकी पहचान नहीं हो सकी। न्याय समाप्त होने के पश्चात् रावण ने कहा, कहिए भगवन! किस लिए आए हो? क्या याचना है? राम ने कहा, "भगवन! हम समुद्र तट पर एक अजय-मेध यज्ञ कर रहे हैं। वेदों के अनुकूल हमारे यज्ञ को पूर्ण कीजिए। आपको निमन्त्रित कर चले हैं। हम कल नहीं आ सकेंगे, परसों से यज्ञ प्रारम्भ करेंगे, अतः आप परसों स्वयं विराजमान होने का कष्ट करें। उस समय रावण ने राम की याचना को स्वीकार कर लिया।

निश्चित समय पर रावण अपने पुष्पक विमान में सवार होकर यज्ञ स्थल पर जा पहुंचा। दोनों भाइयों ने उसका बड़ा स्वागत किया और राम ने रावण को यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया। ब्रह्मा बनने के पश्चात् जब यज्ञोपवीत धारण किए जाने लगे, उस समय रावण ने उन सबका परिचय लिया। जब राम और लक्ष्मण ने अपने नाम बताए तो रावण आश्चर्य में पड़ गया। यह रावण का कर्त्तव्य था कि यज्ञ विधि विधान से किया जाए। उसने राम से कहा- "तुम्हारी धर्मपत्नी कहाँ है?" राम ने कहा कि वह तो आपके गृह लंका में है। रावण ने कहा, यदि मैंने यज्ञ को विधि-विधान से नहीं किया तो मैं देवताओं का महापापी बन जाऊँगा। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सीता को लांऊ क्योंकि बिना पत्नी के यज्ञ विधि-विधान से नहीं हो सकता।"

पुष्पक विमान में सवार होकर रावण सीता के द्वार पर जा पहुंचा और सीता से कहा, "हे सीता! तेरा स्वामी समुद्र तट पर यज्ञ रचा रहा है। मुझे उस यज्ञ का ब्रह्मा चुना है। अतः समुद्र तट पर चलो।" सीता यह सुनकर प्रसन्न हो गई और उसके पुष्पक विमान में विद्यमान हो, उसी स्थान पर जा पहुंची जहां विशाल अजय-मेध यज्ञ करने का विधान बनाया गया था। वहां जाकर बड़े आनन्द से सीता, राम के दक्षिण भाग में विराजमान हो गई और रावण यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। यह यज्ञ कई दिनों तक चलता रहा।

जिस समय यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली थी, उस समय सीता ने राम से कहा, "हे भगवन्! आप यज्ञ तो रचा रहे हैं, परन्तु रावण को देने के लिए आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं।" राम ने कहा 'रावण बड़ा द्रव्यपति राजा है, इसके यहां तो स्वर्ण तक के गृह हैं, मणियों के ढेर लगे रहते हैं। उस समय सीता के पास एक चूड़ामणि था। वह उन्हांने राम को दे दिया और कहा कि इससे आप ब्रह्मा का स्वागत कीजिए। राम ने सीता से चूड़ामणि ले लिया।

यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् वहां यथाशक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता चूड़ामणि लेकर रावण के समक्ष जा पहुंचे। रावण ने कहा, हे राम! मुझे विदित होता है जैसे यह चूड़ामणि सीता का हो। उस समय सीता

ने कहा, "यह चूड़ामणि मेरा क्या है? यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय मेरे लिए आभूषण बनवाया था। आज इस शुभ कार्य में काम आ गया।" उस समय रावण ने कहा, हे सीता! मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार है, परन्तु मैं किसी के शृंगार को भ्रष्ट नहीं करना चाहता।

जब रावण ने यह वाक्य कहा तो प्रजा सन्न हो गई। यज्ञ पूर्ण होने के पश्चात् रावण ने कहा, "हे राम! विदित होता है कि तुम्हारी मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होंगी।" आशीर्वाद देकर सीता से कहा, हे सीता! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी लंका में चलो। सीता ने कहा हे विधाता! आज से तो तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गए हो। मुझे तो यहां भी ऐसा और वहां भी ऐसा। मैं आपके साथ चलूंगी। इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा कि सीता तुम कहां जा रही हो? वह रावण के साथ पुष्पक विमान में विद्यमान हो गई। रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करने के पश्चात् कहा, "हे सीता! आज मुझे विदित होता है कि अब मेरे विनाश का समय आ गया है। मेरी लंका नष्ट होने वाली है। जिसने शत्रु को अपने यज्ञ का ब्रह्मा बनाकर, उसकी आत्मिक ज्योति को खींच लिया, उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया है कि मेरी लंका नष्ट हो जायेगी।" ये वाक्य उच्चारण करते हुए रावण बड़ा शोकयुक्त हो गया। परन्तु रावण ने राम का अजय-मेध यज्ञ विधि-विधान से पूर्ण करवाया था।

- **राष्ट्र का प्राण ईश्वरवाद है।**
- **राष्ट्र में यज्ञ-कर्म होना ही राष्ट्र की शान्ति है।**
- **राष्ट्र में जितना चरित्र होगा, उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा।**
- **राष्ट्र में विविध सम्प्रदाय नहीं होने चाहिए।**
- **मिथ्या उच्चारण करने से मानव की आन्तरिक प्रतिभा नष्ट हो जाती है।**
- **धर्म और मर्यादा मानव के चक्षुओं में विराजमान होती है।**
- **वेद-मन्त्रों की पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है।**

१२महाराजा रावण

महाराजा रावण का बचपन का नाम वरूण था। वह स्वाति पुलस्त्य ऋषि का पौत्र था और उसकी दादी का नाम शकुन्तकेतु था। उसके पिता का नाम मणिचन्द केतु और माता का नाम प्रतिभा सुकुमाञ्जलि था। उसके दो भाई विभीषण और कुम्भकर्ण थे। उसकी एक बहिन थी जिसे सोमतिती और सूर्पणखा भी कहते थे।

तीनां भाइयों ने महर्षि शुकदेशवन्त के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की। वरूण ने अपने गुरू से दसों दिशाओं का ज्ञान प्राप्त किया, अतः 'दशानन' कहलाता था। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ध्रुवा, ऊर्ध्वा, उत्तर पूर्व, पूर्व दक्षिण, दक्षिण पश्चिम और पश्चिम उत्तर ये दस दिशाएँ होती हैं। इनके विज्ञान को जाना। विभीषण ने कर्मकाण्ड को जाना और जो कुम्भकर्ण कहलाता था वह परमाणु विद्या में रमण करने लगा।

राजा महिदन्त मही राष्ट्र के राजा थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सुरेखा था। उनकी पुत्री का नाम मन्दोदरी था। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार उसका विवाह वरूण के साथ हुआ। विभीषण का विवाह संस्कार भी राजा महिदन्त के पुरोहित की कन्या के साथ हुआ। कुम्भकरण का विवाह संस्कार आस्वानकेतु महाराज की कन्या के साथ हुआ। तीनों ही कन्याएं विदुषी थी।

विवाह के कुछ समय पश्चात् वरूण राजा महिदन्त के द्वार पर आए। महिदन्त को व्याकुल देखकर, वरूण ने कारण पूछा।

राजा महिदन्त ने कहा कि लंका का राष्ट्र भी मेरा था, जिसे कुबेर ने मेरे से लेकर स्वयं राजा बन गया है। दशानन ने कहा, आप व्याकुल न हों। मैं लंका को विजय करूँगा। विद्वान सर्वत्र पूज्य होता है। कई राज्यों से सेना एकत्रित की। उनकी सहायता लेकर लंका को विजय करने की घोषणा कर दी। वीर हनुमान के पिता राजा पवन जो महाराजा महेन्द्र के पुत्र थे, उनकी भी सहायता ली।

युद्ध से डरकर महाराजा कुबेर ने लंका को त्याग दिया। इस प्रकार बिना संग्राम के लंका विजय हो गई। महिदन्त ने लंका को वरूण को दहेज रूप में दे दिया और दशानन ने इसे स्वीकार कर लिया। सभी राजाओं की एक सभा एकत्रित की गई, जिसमें सर्वसम्मति से वरूण दशानन को राजा नियुक्त किया गया। उसी सभा में वरूण का नाम रावण नियुक्त किया गया। जिसका अर्थ है दानी या बुद्धिमान। महर्षि कुक्कुट से रावण का राज्याभिषेक करने की प्रार्थना की गई। महर्षि ने रावण के मस्तिष्क का अध्ययन करके राज्याभिषेक करने से मना कर दिया। बहुत समय तक सभा शान्त हो गई। महात्मा भुंजु ऋषि खड़े हुए और दशानन रावण का राज्याभिषेक यह कहकर कर दिया कि इसे लंका प्राप्त हो गई है तो यह होना अनिवार्य है।

तीनों भाईयों के सात पुत्र थे। महर्षि भारद्वाज उन्हें शिक्षा देते थे। रावण के चार पुत्र थे-प्रथम अहिरावण, द्वितीय मेघनाथ, तृतीय नारायन्तक और चतुर्थ अक्षयकुमार। ये चारों बाद में क्रमशः पातालपुरी (अमेरिका), त्रिपुरी (अफगानिस्तान तक), रूस और चीन के राजा बने। विभीषण के दो पुत्र श्वात्रिकेतु और त्रेतकेतु थे। कुम्भकरण का एक ही पुत्र था जिसका नाम सुमेतकेतु था। सुमेतकेतु बाद में श्वेताश्वेतर ऋषि कहलाया।

प्रारम्भ में रावण उद्यम करके जीवन पालन करता था। राजा रावण का राज्य सर्वत्र व्याप्त होने लगा। इन्द्रजीत-मेघनाथ अपनी पत्नी सुलोचना को साथ लेकर मंगल की यात्रा करता था। कुम्भकरण भी अनेक लोकों की यात्रा करता था। रावण के हृदय में अपने पुत्रों की वैज्ञानिक उन्नति देखकर अभिमान छा गया। उसने विचारा उसका राज्य इतना शक्तिशाली बन गया है कि कोई भी मुझे स्पर्श करने वाला राजा संसार में नहीं है। समुद्र तट पर ही सम्पाति और उसके भाई गरूड़ का राज्य था, जिसे रावण ने अपने आधीन कर लिया। गरूड़ को

जटायु भी कहा जाता था।

रावण के सेनापति का नाम दुग्ध था जिसके पुत्र का नाम खरदुषण था। उसके एक वैज्ञानिक स्वमानभानु की पुत्री सुरसा थी, जो भौतिक विज्ञान में पारायण थी। सुरसा अपने शरीर का आकुंचन करना जानती थी। सम्पाति से प्राप्त राष्ट्र को सुरसा को दे दिया। उसका राज्याभिषेक कर दिया और खरदुषण को उसका सेनापति बना दिया।

महाराजा शिव ने एक यन्त्र निर्मित किया था, जिसे लेने के लिए रावण ने प्रार्थना की। माता पार्वती, कार्तिकेय और गणेश के मना करने पर भी महाराजा शिव ने वह यन्त्र रावण को दिया। रावण ने वह यन्त्र लंका में जाकर अपने महल के स्तम्भ में नियुक्त कर दिया। वह यन्त्र रावण की संग्राम में सहायता करता रहता था।

राजा रावण की नास्तिकता की दशा बन गई। कुम्भकरण आलस्य और प्रमाद में परिणत हो गया। दोनों भाईयों का अन्नाद दूषित हो गया। प्रजा पर राष्ट्रीय कर लगा दिया। मांस तक का ऋण कर के रूप में लेने लगे। हीनता आने से लंका का राष्ट्र दूषित हो गया। रावण की बहन सोमतिती गुप्तचर विभाग में थी। वह अपने सौन्दर्य की आभा में कटिबद्ध रहती थी।

रावण चारों वेदां का ज्ञाता और वैज्ञानिक था उसे दैत्य और यवन की श्रेणी में गिना जाने लगा। भगवान राम, माता सीता व लक्ष्मण जब १४ वर्ष की वनवास की अवधि बिता रहे थे, तो वनवास के अन्तिम वर्ष में रावण की बहन दंडक वन में भ्रमण करने के लिए आ पहुँची। उसने राम को अपना पति चुनना चाहा। राम के मना करने पर उसने लक्ष्मण को विवाह-संस्कार करने के लिए कहा। जब सोमतिती अपने हठ से नहीं हटी तो लक्ष्मण ने क्रोध में कहा, 'क्या तुम्हारे माता-पिता व भाई नष्ट हो गए? उनसे कहो कि तुम्हारा संस्कार करा दें'। सोमतिती बहुत क्रोधित हुई और इसे अपना अपमान समझा। अपमान होने के नाते उसने स्वयं अपनी नाक काट ली। उसने षड़यन्त्र रचा और इसलिए रचा, जिससे इन दोनों भाईयों से अपमान का बदला ले सवेंळ। कन्या को जब किसी वस्तु की हठ हो जाती है तो ऐसा कार्य वह स्वतः कर देती है। किसी का अपमान होना भी नाक-कान कट जाना है।

रावण वन में से ही माता सीता को उठा ले गया। रावण ने अपने भाई विभीषण को बुलाकर पूछा कि तुम नित्य प्रति 'ओ३म्' का जप करते हो। मैं राम से विजय पा सकता हूँ या नहीं। विभीषण ने माता सीता को लौटाने को कहा। रावण ने विभीषण को शत्रु कहा और लंका से बाहर जाने को कह दिया। राम ने विभीषण को शरण दी। विभीषण के बताने पर राम ने समुद्र तट पर अजयमेध यज्ञ किया जिसका ब्रह्मा रावण को ही नियुक्त किया गया था।

राम और रावण का युद्ध हुआ। रावण के पुत्रों और सम्बन्धियों को कई देशों में जाकर हराया गया। रावण बलवान और वैज्ञानिक था। राम में विज्ञान के साथ-साथ आत्मिक बल था। राम यह जानता था कि परमात्मा ने उसे शरीर, बड़ों की आज्ञा पालन और सेवा के लिए दिया है। राम ऊँचे योगी महान आत्मा थे, जिसने संसार में पुनः मर्यादा को विकसित किया। राम चरित्रवान व मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाए एवं ऊर्ध्व गति को प्राप्त हुए। रावण में चरित्र का अभाव था। अतः रावण का स्थान राम से निचले स्थल पर ही नियुक्त किया जाता है।

१३मृत्यु शैय्या से महाराजा रावण का उपदेश

जब राम के बाणों से रावण मृत्यु शैय्या पर विराजमान हो गया, तब युद्ध क्षेत्र में राम और लक्ष्मण दोनों विद्यमान थे। लक्ष्मण ने कहा, "प्रभु! हम विजयी हो गए हैं।" भगवान राम ने कहा, "हे लक्ष्मण! हम विजयी नहीं हुए हैं। रावण नीतिज्ञ था, वेदों का अध्ययन करने वाला था और मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस विश्व के व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है। तुम रावण से राजनीति की वार्त्ता सुनकर आओ।" लक्ष्मण अपने अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर, रावण के मस्तिष्क के अग्र भाग में न आ करके पिछले भाग में विराजमान होकर यह कहता है, "हे रावण! हे लंकापति! मैं आपसे कुछ राजनीति की वार्त्ता जानना चाहता हूँ।" रावण मौन रहा और कोई वार्त्ता प्रकट नहीं की।

लक्ष्मण राम के समीप पहुँचे और राम से कहा कि रावण कोई वार्त्ता प्रकट नहीं कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मूर्छा में चले गए हैं या मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं। राम ने लक्ष्मण से पूछा कि उस समय तुम्हारा स्थान रावण के किस आंगन में था? लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि रावण के ऊर्ध्व आंगन में था। राम ने कहा तुम नीतिज्ञ नहीं हो।

भगवान राम और लक्ष्मण दोनां रावण के निकट गए और उसके चरणां की वन्दना करके बोले, "हे रावण! हम कुछ राजनीति की वार्त्ता जानना चाहते हैं। आप कुछ वाक्य उच्चारण कीजिए जिससे हम राज्य सभा में उन वाक्यों को निर्धारित और प्रसारित कर सकें।"

रावण ने कहा, "हे राम! राष्ट्र में विज्ञान तो होना चाहिए किन्तु विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरूपयोग होने पर राष्ट्र का विनाश हो जाता है। राष्ट्र अग्नि के मुख में प्रवेश कर जाता है। समाज अकर्मण्य बन जाता है और वह महान कार्य नहीं कर पाता। राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति हो जाती है और राजा नष्ट हो जाता है। यदि मेरे राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग होता, अच्छे चरित्र की तरंगें होती तो आज मेरी यह दशा न होती।"

इसके पश्चात् रावण ने कहा, "हे राम! यदि अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो तो राजा में आलस्य और प्रमाद नहीं होना चाहिए। राजा जब आलस्य और प्रमाद में आ जायेगा, दूसरां की कन्याओं और पुत्रियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ करेगा तो उसका राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायेगा। मैं अपनी विद्या से स्वर्ण में सुगन्धि लाना चाहता था, परन्तु उसमें सुगन्धि नहीं ला सका। मैं वेदाध्ययन करता रहा, स्वर्ग को जानता रहा, स्वर्ग की आभा में रमण करता रहा परन्तु स्वर्ग में अपना स्थान नहीं बना सका।"

रावण ने पुनः कहा, "हे राम! जिस कार्य को करना हो उसे तत्काल करो। कार्य को कल पर त्यागना एक मूर्खता है, अकर्मण्यता है और पामरों का कार्य है। इसलिए जो भी कर्म करना है, उसे तत्काल करना चाहिए। राष्ट्र में पांडित्य में सूक्ष्मता नहीं आनी चाहिए। व्याकरण का बोध होना चाहिए। व्याकरण के ऐसे विद्वान होने चाहिए जिनसे राष्ट्र में पांडित्य सदैव पनपता रहे। पांडित्य से ही राष्ट्र और समाज की रक्षा होती है और यज्ञ जैसे ऊँचे-ऊँचे कर्मों की रक्षा होती है। यज्ञ से मानव सुगन्धि ला सकता है और दुर्गन्धि दूर कर सकता है।"

रावण के ये शब्द राम के हृदय में अंकित हो गए। कुछ देर पश्चात् रावण ने पुनः कहा, "हे राम! तुमने यह लंका विजय कर ली है परन्तु तुम्हें मेरे सब आक्रमणों और पराक्रमों का भेद विभीषण ने प्रदान किया। मैंने अपने जीवन में दो पाप किए थे। सबसे प्रथम जब मैं ब्रह्मा ऋषि के आश्रम में अध्ययन करता था तो मैंने अपने गुरू की पुत्री पर आक्रमण किया था। मेरी धृष्टता से जब उसकी मृत्यु होने लगी तो वह मुझे श्राप दे गई थी।

उसने कहा था, हे वरूण ब्रह्मचारी! तू भी ऐसे विनाश को प्राप्त होगा कि तेरा वंश समाप्त हो जाएगा। दूसरा पाप सीता को उठाने का किया। ये दोनों पाप मैं अब अनुभव कर रहा हूँ। वह राजा पामर होता है जो दूसरे की पत्नी का अपहरण करके अपने राष्ट्र में प्रवेश कराता है और उससे विलासिता की कल्पना करता है।“

मृत्यु समय इन वाक्यां की विवेचना करता हुआ रावण व्याकुल हो गया। रावण ने भगवान राम के चरण छूकर, प्राणायाम करके अपने शरीर को त्याग दिया। भगवान राम और लक्ष्मण अपने कक्ष में आ गए।

१४महाराजा रावण का निधन

जब राम और रावण का संग्राम हुआ तो रावण मृत्यु को प्राप्त नहीं हो रहा था। मध्य रात्रि में भगवान राम ने एक सभा की। सभा में निर्णय होने लगा कि रावण को हम कैसे विजय कर सकते हैं? उस समय विभीषण ने कहा कि रावण के पास कुछ यन्त्र हैं जिनका सम्बन्ध महारानी मन्दोदरी से हैं। यदि वे यन्त्र उनसे किसी प्रकार प्राप्त हो जाएं तो रावण की मृत्यु हो सकती है। इसकी युक्ति महाराजा शिव वर्णन कर सकते हैं।

महाराजा हनुमान और महाराजा जामवन्त दोनों ने अपने-अपने स्वरूप को परिवर्तित किया और भ्रमण करते हुए कैलाश पर जा पहुंचे। माता पार्वती और महाराजा शिव दोनों विद्यमान थे। महाराजा शिव ने उनका स्वागत किया और विचार-विनिमय होने लगा।

हनुमान ने कहा कि महाराज! रावण और राम का संग्राम चल रहा है। रावण का कुटुम्ब समाप्त होने जा रहा है। हे प्रभु! आप तो उनके आचार्य हैं। आपको उस कुटुम्ब से परम्परा से स्नेह है। आप उनकी सहायतार्थ अपनी शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं कर रहे हैं?

महाराजा शिव ने कहा, हे विप्रो! (दोनों ब्राह्मण वेश में थे) मैं इसलिए रावण की सहायता नहीं कर रहा हूँ क्योंकि जो राजा अपने उद्देश्य से दूर चला जाता है, उसकी सहायतार्थ बुद्धिमानों और विचारकों को नहीं जाना चाहिए। हनुमान ने कहा, "क्या आप राजा रावण का समाप्त होना स्वीकार करते हैं? हमने तो ऐसा श्रवण किया है रावण का अन्त नहीं हो रहा है।"

अब महाराजा शिव के हृदय में कुछ कल्पना जागी। उन्होंने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम विप्रों के रूप में कोई और ही हो। महाराजा हनुमान और महाराजा जामवन्त ने अपना-अपना परिचय दिया और कहा कि महाराज! हम इसलिए आए हैं कि भगवान राम ने आपको निमंत्रित किया है। आपका स्नेह आयोध्या के राजाओं पर भी विशेष रहा है। उनकी सभा में कुछ विचार प्रकट करें कि रावण के विषय में क्या करना चाहिए? महाराजा शिव ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

अपने यान में विद्यमान होकर महाराजा शिव भगवान राम की गोपनीय सभा में पहुंच गए। विचार-विनिमय करते हुए भगवान राम ने महाराजा शिव के चरणों की वन्दना की और कहा कि भगवन! रावण मृत्यु को कैसे प्राप्त हो सकता है? मुझे अपनी वाणी से उच्चारण कीजिए कि मैं क्या करूं?

महाराजा शिव ने कहा हे राम! रावण की नाभि में अमृत कहलाया जाता है। सबसे प्रथम तो उसने बाल्यकाल में योगाभ्यास किया उसके पश्चात् जब मेरे सम्पर्वळ में आया तो मैंने रावण और मन्दोदरी को एक यन्त्र दिया था। वह यन्त्र रावण के राष्ट्र गृह के मध्य स्तम्भ में लगा हुआ है। उस यन्त्र में यह विशेषता है कि यह रावण को सहायता देता रहता है। उसकी परमाणु शक्ति का समन्वय रावण की नाभि से है। इसलिए कोई और यन्त्र रावण पर प्रभाव नहीं डाल सकता।

भगवान राम ने कहा भगवन! अब क्या किया जाए? महाराजा शिव ने कहा "जामवन्त और हनुमान ऐसे हैं जो ब्राह्मणों के वेश में महारानी मन्दोदरी की वन्दना करके, उसके सुहाग का दान मांग सकते हैं। महारानी मन्दोदरी विदुषी है, पवित्र है और दानी भी बहुत है। यदि उसने अपने सुहाग का दान प्रदान कर दिया तो तुम राजा रावण को विजय कर सकते हो। अन्यथा तुम किसी भी काल में रावण को विजय नहीं कर सकते।"

महाराजा शिव इतना उच्चारण करके अपने यान में विद्यमान होकर प्रस्थान कर गए। राम रात्रि समय चिन्तन करते रहे कि मन्दोदरी से कैसे भिक्षा प्राप्त की जा सकती है? महाराजा जामवन्त और हनुमान ने कहा,

"महाराज! आप चिन्तित न हों। हम दोनों लंका में प्रवेश करेंगे।"

हनुमान और जामवन्त ब्राह्मणों का स्वरूप धारण करके लंका जा पहुंचे। लंका में जाने के पश्चात् वे महारानी मन्दोदरी के यहां पहुंच गए। उन्हांने भिक्षामयी ध्वनि उच्चारण की। मन्दोदरी, उन्हें स्वर्ण मुद्राएं दक्षिणा में देने लगी तो उन्होंने कहा हम ब्राह्मण हैं, इन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। मन्दोदरी ने यह विचारा कि संग्राम चल रहा है, कहीं ऐसा न हो ये राम की सेना के हों। उसने कहा, क्या चाहते हो? क्या तुम वास्तव में ब्राह्मण हो? उन्होंने कहा कि हाँ, हम दोनों ब्राह्मण हैं, हमारी इच्छा यह है कि आप अपनी वाणी से हमें दूर न करें तो हम कुछ उच्चारण करें। हम आपकी वाणी से एक वचन चाहते हैं। महारानी ने शंकित मन से भिक्षा में उन्हें वचन दे दिया और कहा राजलक्ष्मियां अपने वचनों से दूर नहीं हुआ करती।

वचन निभाना इनका आभूषण है, धर्म है और मानवता है। मैं अपने वचन से दूर नहीं हो सकूंगी। हे ब्राह्मणों! तुम उच्चारण करो! दोनों ने एक स्वर में कहा कि हम आपसे सुहाग का दान चाहते हैं। आपके सुहाग की दक्षिणा चाहते हैं।

महारानी मन्दोदरी मौन हो गई। कुछ समय पश्चात् कहने लगी "तुम ब्राह्मण नहीं हो। यह गोपनीय विषय तुम्हें किसने बताया है? यह गोपनीय विषय मुझे, मेरे पतिदेव और महाराजा शिव को प्रतीत था। किसी चतुर्थ को प्रतीत नहीं था। तुम्हें किसने यह मार्ग बताया है?" दोनों ने एक स्वर में कहा कि महाराजा शिव ने बताया है।

महारानी मन्दोदरी कुछ मौन रह करके बोली, "यथार्थ है। मैं अपने सुहाग की दक्षिणा तुम्हें प्रदान करती हूँ। महाराजा शिव की ही जब यह इच्छा नहीं रही कि मेरा पति संसार में जीवित रहे तो उनकी मृत्यु का समय आ गया है। शरीर बनने में जिन परमाणुओं का संग्रह हुआ है, निर्माण हुआ है, उनका विकृत होना भी अनिवार्य है।"

हनुमान जी ने महल में स्थित मध्य स्तम्भ के दो भाग किए। इस स्तम्भ में वह यन्त्र विद्यमान था जो रावण को प्राण शक्ति प्रदान कर रहा था। महारानी मन्दोदरी ने यन्त्र उन्हें प्रदान कर दिया। दोनों यन्त्र लेकर राम की सेना में आ गए। राम यन्त्र पाकर प्रसन्नतायुक्त हो गए और उस यन्त्र को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके पश्चात् रावण संग्राम में राम के तीखे बाणों से घायल होकर मृत्यु-शैय्या पर विराजमान हो गया।

- **जो समाज में अच्छाईयाँ ला देता है, वह आर्य कहलाता है।**
- **धर्म व्यापकता को कहते हैं और अधर्म संकीर्णता को।**
- **हृदय रूपी गुफा में ही तो प्यारा प्रभु ओत-प्रोत है।**

१५ तपस्विनी माता अंजना

अंजना महाराजा महीवृत केतु की कन्या थी। उसका विवाह महाराजा महेन्द्र के पुत्र पवन के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात् अंजना अपनी सहेलियों के साथ बैठी थी, तो किसी सहेली ने पवन के प्रति हंसी-हंसी में कुछ अपशब्द कह दिये। पवन ने समझा कि ये शब्द अंजना ने कहे हैं। उसने अंजना को अपने राष्ट्र में ले जाकर अपने से अलग महल में छोड़ दिया। उसने घोषणा करके अंजना को दुहाग दे दिया। दुहागिन अंजना ने अपने आपको स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन कर लिया। धीरे-धीरे १२ वर्ष व्यतीत हो गए।

वरूण (राज्यभिषेक के पश्चात् राजा रावण) ने लंका के राजा कुबेर को विजय करने के लिए राजकुमार पवन को सहायता के लिए निमन्त्रण दिया। पवन ने अपनी सेना सहित गमन किया और जाते हुए सायंकाल होने पर मार्ग में एक नदी पर पड़ाव डाल दिया। रात्रिकाल में दो पक्षियों (चकवा-चकवी) को आवाजें करते सुन कर राजा पवन के हृदय में व्याकुलता हो गई। उन्होंने अपने मन्त्री से पूछा कि ये पक्षी आवाजें क्यों कर रहे हैं? मन्त्री ने कहा, "महाराज! परमात्मा के नियमानुसार ये दोनों पक्षी दिवस-भर एक साथ रहते हैं, परन्तु जब रात्रि आती है तो ये पक्षी एक-दूसरे से दूर रहते हैं। दूर रहने के कारण ये व्याकुल हैं।" महाराजा पवन के हृदय में विचार आया कि मैंने अपनी पत्नी को १२ वर्ष से त्याग रखा है। पवन सोच-सोचकर व्याकुल हो गया। व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि उसी समय रात्रिकाल में विमान पर विराजमान होकर अंजना के द्वार पर जा पहुंचा।

अंजना ने अपने पतिदेव को देखकर उसके चरणों को स्पर्श किया और कहा, "आइए भगवन! मैं तो हमेशा आपका गुणगान गाती रहती हूँ। आपने मुझे दुहागिन बना दिया, परन्तु उसके पश्चात् भी मैं आपका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ।" पवन ने कहा, "देवी! तुम धन्य हो। मैं वरूण की विजय की सहायता के लिए, अपनी सेना सहित यहां से गमन कर गया था। मार्ग में से तुम्हारे लिए आया हूँ।" अंजना ने कहा, "मुझे तो आपने दुहागिन बना रखा है। अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर यहां आना चाहिए था। यदि आपको संग्राम में से आने में देर हो गई तो आपके माता-पिता मुझे इस गृह से निकाल देंगे।" पवन ने कहा कि मैं शीघ्र ही विजय प्राप्त करके अपने राष्ट्र में आ जाऊँगा। रात्रि में अंजना के साथ रहकर, प्रातः काल अपनी मुद्रिका का परिवर्तन करके पवन ने वहां से गमन किया और अपनी सेना के पास जा पहुँचा। पवन को लंका में कई महीने लग गए।

सन्तान को माता ही ऊंचा बना सकती है और कोई नहीं बना सकता। माता तपस्विनी होती है तो माता का गर्भाशय भी ऊंचा बन जाता है। जब हनुमान जी अंजना के गर्भाशय में थे तो माता कहा करती कि बालक तू संसार में वीर व महान बनना। पवन के माता-पिता ने अंजना को गर्भवती देखकर कहा कि इसने हमारा गृह कलंकित कर दिया है। राजा महेन्द्र ने कहा कि राष्ट्र का नियम है कि यदि कोई भी कन्या इस प्रकार कलंकिनी हो जाती है तो उसका काला मुख, काला सारथी, काले वस्त्र, काले घोड़े और काले ही रथ पर विद्यमान करके भयंकर वन में त्याग दिया जाता है या वह जहां कहती है, वहां त्यागा जाता है। अंजना ने प्रार्थना की और कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है। मैं दोष की पात्र नहीं हूँ। आपके पुत्र (पवनद्ध संग्राम करने चले गए थे, परन्तु मार्ग में से वापिस लौटकर एक रात्रि मेरे पास विश्राम किया था।" पवन की माता जी ने ये वाक्य स्वीकार नहीं किये। अंजना ने पवन की दी हुई मुद्रिका भी दिखाई, परन्तु माता-पिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परिणाम यह हुआ कि अंजना ने कहा कि मेरे माता-पिता के गृह में मुझे छोड़ दीजिए।

काला सारथी अंजना को लेकर उसके माता-पिता के गृह में छोड़ने गया। जब राजा महीवृत केतु को पूर्ण घटनाक्रम का पता लगा तो उसने कह दिया कि अंजना को भयंकर वन में त्याग दो। इस प्रकार सारथी

अंजना को भयंकर वन में त्याग कर रथ को अपने राष्ट्र में ले आया।

अंजना ने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा, "हे परमात्मा! यह क्या हो गया? मैं पापिनी तो नहीं थी, परन्तु पता नहीं कौन-सा भोग मेरे सामने आ गया? मेरे हृदय में कोई अपवित्रता भी नहीं थी। मैं अपने जीवन में सदैव शुद्ध और पवित्र रही हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य नितान्त रहा है और ब्रह्मचर्य की गति भी ऊर्ध्व रही है।"

भयंकर वन में व्याकुल होती हुई अंजना एक कन्दरा में विद्यमान हो गई। सर्द ऋतु का काल था और सर्द वायु चल रही थी। थकी हुई अंजना निन्द्रा में तल्लीन हो गई। अगले दिन भयंकर वन की कन्दरा में हनुमान का जन्म हुआ। अंजना व्याकुल होकर कहने लगी कि हे बाल्य! तेरा जन्म राष्ट्र गृह में होता तो न प्रतीत क्या-क्या दान दिये जाते? तेरा कैसा भाग्य है? इस कजली वन में तुझे क्या पान करा सकती हूँ?

रात्रि होने पर अंजना व्याकुल होने लगी। इतने में अंजना के मामा ब्रीहिवृण ने अपने पुष्प विमान को उसी स्थली पर स्थिर किया। वे पर्वत माला पर भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि मध्य रात्रि में इस भयंकर वन में कौन व्याकुल हो रहा है? कोई स्पष्ट आवाज न सुनकर उसने उच्च स्वर में कहा, "अरे! कौन है?" अंजना ने कहा, "भगवन्! मैं हूँ। मेरा नाम अंजना है।" राजा ब्रीहिवृण ने अंजना को पहचान कर कन्दरा से बाहर किया और कहा हे पुत्री! मैं तुम्हें अपने गृह लिए जा रहा हूँ।

जब विमान उड़ा तो हनुमान जी अंजना के हाथों से फिसलकर (छूट कर) विमान से नीचे गिर गए। अंजना ने कहा, "हे मामा! मेरा पुत्र विमान से नीचे गिर गया है। वह तो समाप्त हो गया होगा।" विमान को नीचे उतार कर देखा तो हनुमान जी के मुख पर चोट लग गई थी। इसी कारण हनुमान जी की मुखाकृति कुछ बिगड़ गई थी। विमान में पुनः बैठकर अंजना अपने पुत्र सहित अपने मामा के राष्ट्र 'नौतनपुरी' में आ गई।

उधर महाराजा पवन कुबेर को विजय करके अपने राष्ट्र में पहुँचे तो अपनी माता जी से पूछा कि अंजना कहाँ है? माता जी ने कहा, "हे पुत्र! वह कलंकिनी हो गई थी। हमने उसे गृह से निकाल दिया और उसके पिता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया था। अतः उसे कजली वन में त्याग दिया गया।" पवन ने कहा, हे मातेश्वरी! यह तो महापाप हो गया है। अंजना निर्दोष है। पवन ने संकल्प कर लिया कि यदि अंजना मुझे मिल गई तो वापिस घर आ जाऊँगा अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को कजली वन में त्याग दूँगा। यह संकल्प करके वह राष्ट्र छोड़ कर चला गया।

अंजना ने अपने मामा से कहा, "हे मामा! मुझे मेरे पति के गृह में पहुँचा दीजिए। मैं वहीं सुशोभित होऊँगी। मेरे पति भी संग्राम से वापिस आ गये होंगे। राजा ब्रीहिवृण अंजना और बालक हनुमान को लेकर पहुँचे तो सूचना मिली कि राजा पवन अंजना की तलाश में कजली वन में जा पहुँचे हैं। अंजना भी हनुमान को लेकर अपने मामा के साथ कजली वन में जा पहुँची।

राजा पवन भ्रमण करते हुए उसी स्थान पर जा पहुँचे जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था। वहाँ उन्हें अंजना को दी हुई मुद्रिका प्राप्त हो गई। उन्होंने सोचा अंजना तो नष्ट हो गई होगी। अतः अंजना के वियोग में समिधाएं एकत्रित करके प्राणों को त्यागने की तैयारी कर ली। अग्न्याधान करते ही जब शवयात्रा में परिणत होने लगे, इतने में ही अंजना भी जा पहुँची।

अंजना ने कहा, हे देव! यह क्या कर रहे हो? राजा पवन ने कहा, तुम्हारे वियोग में प्राणों का अन्त कर रहा था। दोनों का मिलन हुआ। हनुमान जी को लेकर दोनां कजली वन से अपने राष्ट्र में गए।

अंजना तपस्विनी थी। तपस्विनी के गर्भ में तपस्वी पुत्र का जन्म होता है। तप ही मानव को ऊँचा बनाता

है। माताएं जब तपस्विनी बन जाती हैं तो यह समाज ऊँचा बन जाता है। यह राष्ट्र और संसार ऊँचा बन जाता है।

- **विवेक में मान-अपमान नहीं होता।**
- **जो मानव संकल्प धारण करता है, उसका जीवन महान बना करता है।**
- **जब कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है।**
- **अशुद्ध आहार करने से अशुद्ध तरंगों का जन्म होता है और शुद्ध आहार करने से शुद्ध तरंगों का जन्म होता है।**
- **आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करके ब्रह्म तो बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता।**

१६ योगेश्वर श्रीकृष्णा

योगेश्वर श्रीकृष्णा का जन्म जन्माष्टमी के दिवस हुआ था। उनका जन्म राजगृह में नहीं अपितु राजा कंस के कारागार में हुआ। राजा कंस महाराजा उग्रसेन का पुत्र था। प्रसंग है कि एक समय कंस ने नारद मुनि से पूछा कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? नारद मुनि ने उत्तर दिया कि तुम्हारी जो बहन देवकी है, इसी के गर्भ से सातवीं सन्तान पैदा होगी, वह पुत्र होगा और वही तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा।

राजा कंस ने संकल्प कर लिया कि अपनी बहन की प्रत्येक सन्तान को जन्म होते ही नष्ट करूँगा और मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा। अतः उसने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को अपने कारागार में बन्दी बना लिया। जो भी शिशु गर्भ से उत्पन्न होता, उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कन्याओं को नष्ट करने लगा। जब सातवें की आशाकृति हुई तो राजा कंस के अत्याचारों से समाज में एक बड़ी क्रान्ति आई। क्रान्तिवादियों ने कहा इसने तो अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर दिया, यह हमें क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा?

राज्य की सारी प्रजा परमात्मा से याचना करने लगी कि हे प्रभु! देवकी के गर्भ से सातवां शिशु उत्पन्न होने वाला है, उसकी रक्षा कर। परमपिता परमात्मा ने प्रजा की आत्मा की ध्वनि स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जिस दिन श्रीकृष्णा जी का जन्म होने वाला था उसी दिन देवकी और वसुदेव यमुना पर स्नान करने जा पहुँचे।

वहां पर माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए। माता यशोदा ने कहा कि मैं गर्भवती हूँ, यदि मेरे पुत्री उत्पन्न होगी तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। उन दोनों का एक संकल्प हो गया। रात्रि में जब योगेश्वर श्रीकृष्णा का जन्म हुआ तो उस कारागार में जितने भी कर्मचारी थे वे सब गाढ़ी निद्रा में परिणत हो गये। जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा हो तो उसको संसार में कौन नष्ट कर सकता है?

योगेश्वर श्रीकृष्णा जी का जन्म उल्टे पैरों हुआ। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके यमुना को पार करते हुए यशोदा के द्वार पर जा पहुँचे। उसी रात यशोदा के कन्या का जन्म हुआ। उसने उसे वसुदेव को अर्पित कर दिया। प्रातःकाल होने से पूर्व वसुदेव ने कन्या ले जाकर देवकी को अर्पित कर दी।

दिवस होते ही कंस ने कहा कि पुत्र है या पुत्री है। सेवकों ने कहा कि पुत्री है। राजा कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस पश्चात् नारद पुनः आ गए। कंस ने नारद मुनि से कहा कि मैंने देवकी के सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है। नारद ने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का तो कारण बन गया है। वह पुत्र तो माता यशोदा के यहाँ पहुँच गया और वह नष्ट नहीं हो सकेगा। यह वाक्य कंस ने श्रवण किया तो उन्होंने योद्धाओं को समय-समय पर श्रीकृष्णा जी को नष्ट करने के लिए भेजा। वह कैसे नष्ट हो सकता था? महापुरुषों की महिमा अलौकिक होती है, उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनकी सब इन्द्रियों की प्रतिभा अलौकिक होती है। बचपन से ही श्रीकृष्णा जी ने अनेक योद्धाओं को नष्ट किया परन्तु वह स्वयं ज्यां का त्यों रहा।

राजा कंस के कारागार में माता देवकी सदैव गायत्री महामन्त्र का चिन्तन करती रहती थी और संकल्पवादिनी बनी रहती थी। वे माताएं महान होती हैं जिनका मन पवित्र होता है। जो अन्न कंस देता था उसको गायत्री माँ के अर्पण करके, शुद्ध संकल्प करके अर्थात् एक सौ एक बार गायत्री का पाठ करके पान

करती थी। इसी कारण माता देवकी के गर्भ से योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने पूर्व जन्मों को भी भलीभांति जानता था।

गोकुल वासियों के गृहों में जितना भी दही और घृत होता था, वह राजा कंस के यहाँ 'कर' के रूप में जाता था। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि घृत और दही गृहों में ही रहना चाहिए, राजा के यहाँ इस प्रकार का 'कर' नहीं जाना चाहिए। अतः प्रजा ने 'कर' देना बन्द कर दिया।

बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण जी की इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह सब कार्य विद्वतापूर्वक करते थे। बचपन से ही सोलह कलाओं में पारंगत थे। नित्य-प्रति साधना के साधक रहते थे। वे जानते थे कि पृथ्वी में क्या-क्या है? अन्तरिक्ष में परमाणु क्या कर रहे हैं? उन्हें प्रकृति का पूर्ण ज्ञान था।

श्रीकृष्ण जी ने महर्षि सन्दीपन के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की। उन्हें सोलह हज़ार वेद की ऋचाएं कंठस्थ थी जिन्हें आलंकारिक रूप में गोपिकाएं कहा जाता है। वह एकान्त स्थान में वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे और गोपिका रूपी ऋचाओं से विनोद किया करते थे। वह हर समय वेद की ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी जिसे राधा, रूक्मिणी और सत्यभामा के नामों से पुकारा जाता था। उनकी पत्नी से प्रद्युमन नामक बालक उत्पन्न हुआ। उसके पश्चात् उस महान जन्म-जन्मान्तरों के योगी ने बारह वर्ष तक अपने जीवन का अनुसन्धान किया। द्वापर के पश्चात् किसी ने अपने जीवन का ऐसा मन्थन नहीं किया। उनके एक-एक रोम से ऐसी ज्योति उत्पन्न होती थी जैसे सूर्य की महान किरणें होती हैं। अपने समय में बहुत बड़े बुद्धिमान, महान एवं विचित्र थे। वेदों के प्रकाण्ड पंडित थे। उनकी ऐसी प्रबल आत्मा थी कि दूसरां की आत्मा उनके आत्मिक बल से प्रभावित होकर उनके ही आदेशों पर चलने लगती थी।

भगवान श्रीकृष्ण जी ने एक समय कहा था कि 'जिस समाज में गऊओं की रक्षा होती है वह समाज ऊँचा बन जाता है। वे मार्ग से आते, तो एक ध्वनि किया करते थे, ध्वनि नाद सुनकर गऊएँ प्रसन्न होकर दूध देने के लिए तत्पर हो जाती थी। जब दुधारू पशु प्रसन्न होकर दूध देता है तो वह बुद्धिवर्धक होता है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र में किसी पशु, पक्षी अथवा जीव का हनन नहीं होना चाहिए। राष्ट्र में गऊओं की रक्षा करना सबका परम कर्त्तव्य होता है। यदि पशु के हृदय में यह वेदना नहीं है कि मैं दुग्ध प्रदान कर सवूँळ तो वह दुग्ध रक्त के तुल्य ही होता है।

भगवान श्रीकृष्ण वेद-मन्त्रों के गोपनीय विषयों को विचारते रहते थे। उनके ऊपर अनुसन्धान किया करते थे और अनुसन्धान करते-करते प्रकृति पर शासन कर लेते थे। प्रातःकाल जब अन्तरिक्ष में तारा-मण्डलां का प्रकाश रहता था, उस समय अपने स्थान को त्याग देते थे और गायत्राणी छन्दों का पाठ करते थे। उसके पश्चात् यज्ञ करते थे और यज्ञ के ऊपर अनुसंधान किया करते थे। उनकी पत्नी उनसे निवेदन करती रहती कि महाराज! आप भोजन भी पान नहीं करते हो, सदैव ऐसे गोपनीय विषयों में संलग्न हो जाते हो कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। श्रीकृष्ण जी कहते हे देवी! मैं क्या करूँ? यह जो वेदों का ज्ञान है, यह ऐसा गोपनीय विषय है कि मेरा हृदय प्रसन्न रहता है और इसे त्यागने के लिए मेरी इच्छा नहीं होती कि आज मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूँ अथवा यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूर चले जाएं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने वेदों का अध्ययन करने से ही नाना प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया था। भौतिक विज्ञान में उनकी विलक्षण गति थी। उन्होंने एक यन्त्र जाना था जिसके द्वारा महाभारत युद्ध की जितनी भूमि थी

उसको 'श्रृंगकेतु' नाम की रेखा से युद्ध क्षेत्र को सीमाबद्ध कर दिया था। जब संग्राम हुआ तो नाना प्रकार के परमाणुओं का प्रयोग किया गया, परन्तु उस रेखा में यह विशेषता थी कि जितना भी यौगिक यन्त्रों का प्रभाव होता था जिनसे पृथ्वी पर विध्वंस हो सकता था, वह उस रेखा से बाहर नहीं जाता था। ऐसी ही रेखा को त्रेता काल में लक्ष्मण ने जाना था और माता सीता के चारों ओर स्थिर किया था।

श्रीकृष्ण जी ने मौनधुक नाम के यन्त्र को जाना जिसके छोड़ने से अन्तरिक्ष में रात्रि प्रतीत होती थी और सोमधुक यन्त्र जाना जिसके छोड़ने से रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता था। इन्हीं यन्त्रों द्वारा अर्जुन की सहायता करके उन्होंने जयद्रथ को नष्ट करवाया था। मंगल ग्रह की यात्रा करने के लिए सौकिक नामक यन्त्र भी निर्धारित किया था।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जी कुरूक्षेत्र युद्ध के नियन्ता एवं नीतिज्ञ थे। जैसी राजनीति देखी, जैसा समय देखा, उसके अनुकूल व्यवहार किया, यह केवल उन्हीं की योग्यता थी। महाभारत काल में भौतिकता बहुत बढ़ गई थी। नाना प्रकार के यन्त्र बन गए थे। महाराजा अम्बरीश के पास एक ऐसा यन्त्र था जिसके एक बार प्रयोग से ही नौ अक्षौहिणी सेना समाप्त करके यन्त्र वापिस उनके पास आ जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र थे जिनके प्रयोग से पृथ्वी में विशाल खड्डे हो जाते थे, बड़े-बड़े जलाशयों को सुखा कर भूमि में बदल देते थे। जहाँ भौतिक विज्ञान से ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण कर, एक-दूसरे को नष्ट करने की योजनाएं बनाई जा रही थी, वहाँ श्रीकृष्ण जी ऐसे महान योगी थे जिन्हांने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध को रोकने का यत्न किया परन्तु जब कुछ न हुआ तब महाभारत का युद्ध कराया। युद्ध में श्रीकृष्ण जी, अर्जुन के सारथी थे। अर्जुन दोनों पक्षां को देखकर शोकातुर हो गए थे। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा था कि हे अर्जुन! यह मोह तुम्हें इस प्रकार क्यों आया है? कर्त्तव्य को जो मानव मोह के वशीभूत होकर त्याग देता है, उस मानव के यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। अतः आज तुम शोकातुर न हो। अपने कर्त्तव्य को न त्यागो। आज जिनका तू मोह कर रहा है वे तो नष्ट होने ही हैं। श्रीकृष्ण के उपदेशों को सुनकर अर्जुन का अज्ञान दूर हो गया और युद्ध करने को तैयार हो गया। ये उपदेश ही 'भगवद्गीता' नामक ग्रन्थ में विद्यमान हैं। इस संग्राम में सब बुद्धिमान और वैज्ञानिक समाप्त हो गए। कुरूक्षेत्र का मैदान श्मशान स्थल बन गया। प्राणी मात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गए। कौरवों के कुटुम्ब में केवल एक नेत्रहीन धृतराष्ट्र रह गया और माताएं रह गई। पाण्डव पुत्रों ने विचारा अब हमें कहाँ गमन करना चाहिए।

कुरूक्षेत्र में एक सभा हुई जिसमें निर्णय लिया गया कि हस्तिनापुर चलें। जब गति करने लगे तो भगवान श्रीकृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके, चिन्तन करके बोले, 'आज गति नहीं करेंगे, हम कल हस्तिनापुर धृतराष्ट्र के समीप जायेंगे।' अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गए। अपने यन्त्रों में विद्यमान होकर उन्होंने एक लोहे का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर करके पुनः कुरूक्षेत्र आ पहुँचे। अगला दिवस आया तो पाँचों पाण्डव और श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ गए। जब धृतराष्ट्र से मिलने पहुँचे तो धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि मैं भीम को कण्ठ से ओत-प्रोत होना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण जी ने जान लिया। उन्होंने जो लोहे का भीम स्थापित किया था उसे पकड़ा कर कहा कि यह है भीम, तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। उस अन्ध धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को नष्ट कर दिया और भीम का जीवन बच गया।

श्रीकृष्ण जी महान परमयोगी थे जिन्होंने प्रभु की महत्ता को जाना था। आज के मानव ने उन्हें परमात्मा कहकर उनके महत्व को समाप्त कर दिया है। किसी भी महापुरुष को परमात्मा कहना असंगत है। भगवान शब्द का प्रयोग आदरसूचक है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा को जन्म धारण करने की क्या आवश्यकता है? परमात्मा तो निराकार रहते हुए भी जिस वस्तु की रचना कर देते हैं, उसका नाश भी वे निराकार होते हुए ही कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा तो निराकार होते हुए सर्वशक्तिमान भी है। अवतार यह नहीं होता कि परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके आ जाए अपितु अवतार उसे कहते हैं जो परमात्मा के निकट जाने वाली आत्मा हो। ऐसी आत्मा लोक कल्याण के लिए जन्म लेती है।

१७ माता गंगोत्री का आदेश

द्वापर काल में राजा गंगेतुराज की गंगोत्री नामक एक सुन्दर कन्या थी। उसका विवाह राजा शान्तनु से हुआ था। राजा शान्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु सब मरते गए। महाराजा शान्तनु को बड़ी चिन्ता हुई कि उनके राष्ट्र का कोई उत्तराधिकारी नहीं रहा। कुछ समय के पश्चात् बड़ा सुन्दर आठवां बालक उत्पन्न हुआ। विद्वानों ने बालक का नाम गंगशील रखा। गंगशील बाल्यावस्था में ही बड़ा तेजस्वी और चतुर था। यही गंगशील बाद में कौडिल्य ब्रह्मचारी और भीष्म पितामह के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

जब माता गंगोत्री का स्वर्गवास होने लगा तब राजा शान्तनु और कौडिल्य ब्रह्मचारी दोनां उपस्थित थे। माता ने पहले अपने पुत्र को आदेश दिया, "इस समय मेरे अन्तिम सांस चल रहे हैं। मेरा जीवन समाप्त होने वाला है। मेरा आदेश है कि जब तक तू जीवित रहे तब तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करे जिससे तुझे मृत्यु भी नहीं छू सके और अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बने। मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा जब तू महान ब्रह्मचारी बन करके अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनाएगा। तू ब्रह्मचर्य से हीन होकर संसार का कीड़ा न बनना। सूर्य के समान तेजस्वी बनना जैसे सूर्य प्रातः काल उदय होकर तीनां लोकां को तपायमान करता है और महान रात्रि के अन्धकार को समाप्त करके अपने दिव्य प्रकाश से मानव को उच्च बना देता है वैसे ही तू भी महान तेजस्वी बनना। यदि तूने अपने शरीर को और राष्ट्र को दूषित किया तो तेरा जीवन न होने के तुल्य होगा।"

इसके पश्चात् अपने पतिदेव से कहा, "हे पतिदेव! मेरा मृत्युकाल आ गया है। मेरे कुछ ही सांस शेष हैं। मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ। हे भगवन्! आप मेरे स्वामी हैं और यह हमारा बालक है। परमात्मा की दया से हम तीनां का सम्बन्ध बन गया है। यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए, मैं आपकी धर्मपत्नी बन गई। हम तीनां के मेल का इतना ही समय परमात्मा ने दिया था।

अच्छा भगवन्! मेरा एक आदेश है। वास्तव में पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे? पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं होती। हे पतिदेव! यदि आपको संसार की इच्छा जागृत हो जाए तो आप दूसरा विवाह करा लेना। आपने विवाह नहीं कराया और आपके कुविचार बन गए या आपने किसी भी व्यक्ति की कन्या को भ्रष्ट कर दिया तो यह राष्ट्र भ्रष्ट हो जाएगा। हे पतिदेव! आप भ्रष्ट न हो जाना। यदि आप अपने मार्ग से भ्रष्ट हो गए तो राष्ट्र में भ्रष्टाचार पैळल जाएगा। आपका राष्ट्र दूषित हो जाएगा। आपको परमात्मा ने उच्च कर्मों के आधार पर इतने बड़े साम्राज्य का राजा बनाया हुआ है।

मृत्यु समय मेरा यही आदेश है। आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे अनुरोध को अवश्य स्वीकार करें। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहें तो परमात्मा ने जैसा स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है वैसा ही परमात्मा के समक्ष अर्पित कर देना। यदि आपने अपने रहते हुए अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया या स्वयं चरित्र से दूषित हो गए तो आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे।"

माता गंगोत्री ने ऐसा आदेश देकर, नमस्कार करके अपने प्राणों को त्याग दिया। आज ऐसी माता कहाँ से लाएं और कहाँ खोजें, जो अपने पुत्र और पति को इतना सुन्दर आदेश देने वाली हो। राजा शान्तनु ने बड़े आनन्दपूर्वक नाना उत्तम सामग्री संचित करके नाना विद्वानों के द्वारा विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार किया। कौडिल्य ब्रह्मचारी ने भी अपनी माता के अन्त्येष्टि संस्कार में वेद मन्त्रों का पाठ किया।

उस महान ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर आदेश माता से पाया। जिस समय महाभारत संग्राम में अर्जुन, शस्त्रों का प्रहार उनके शरीर पर करते थे तो भीष्म पितामह के शरीर से शस्त्र भी उछल जाते थे। शस्त्र भी दूर भागते थे और त्वचा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। उस समय अर्जुन ने एक वाक्य कहा था कि हे पितामह! मेरे अस्त्र-शस्त्र आप पर आघात क्यों नहीं कर पाते? भीष्म पितामह ने कहा था कि "हे पुत्र! हे बालक! मैंने माता के आदेश द्वारा उस अवस्था को पाया है कि जिससे मैं मृत्यु विजयी बन गया हूँ। मैं चाहूँगा तो मेरी मृत्यु होगी, अन्यथा कदापि नहीं होगी।" कैसा सुन्दर ब्रह्मचारी था?

१८विदुषी द्रौपदी

द्रौपदी पांचाल राष्ट्र के राजा द्रुपद की कन्या थी। वह बचपन से ही प्रखर बुद्धि वाली थी। उसने महर्षि सामन्तक से वेदों की शिक्षा का अध्ययन किया था। वह सदैव वेदों का गान करती रहती थी।

बाल्यकाल से मृत्यु पर्यन्त एक भी दिन ऐसा नहीं था जिस दिन उसने प्रातःकाल यज्ञ न किया हो या वेदों का अध्ययन न किया हो। पांडु पुत्र अर्जुन की प्रशंसा सुनकर राजा द्रुपद ने संकल्प कर लिया था कि उसकी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ होना चाहिए। पाँचों पाण्डव विदुर की सहायता से माता कुन्ती सहित लाक्षागृह बरनावा से जीवित बच निकले थे। उनके स्थान का पता न होने के कारण राजा द्रुपद चिन्तित थे। भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से राजा द्रुपद के हृदय में द्रौपदी के लिए स्वयंवर करने की भावना आई।

राजा द्रुपद के वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र तैयार किया। वह एक चक्र था। चक्र में एक छिद्र था, जिसमें से होकर यान्त्रिक मछली के नेत्र को छेदन करना था। चक्र एक क्षण में ७५०० चक्र पूर्ण करता था। राजा की प्रतिज्ञा थी कि जो छिद्र में से होकर शस्त्र द्वारा यान्त्रिक मछली के नेत्र का छेदन करेगा, वही मेरी कन्या से विवाह कर सकता है।

पाण्डव भी भ्रमण करते हुए पांचाल राष्ट्र में पहुँच गए। माता कुन्ती को एक कुम्भकार के घर ठहरा कर साधुओं के वेश में स्वयंवर में पहुँच गए जहाँ अनेक राजा बारी-बारी से मछली के नेत्र को छेदने का प्रयास कर रहे थे। कर्ण ने भी यह विचार किया कि मैं इसका छेदन करूंगा, परन्तु द्रौपदी ने कहा, "हे कर्ण! तुम्हें इसका अधिकार नहीं क्योंकि तुम्हारे जन्म के विषय में प्रतीत नहीं कि तुम कैसे उत्पन्न हुए? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? जब द्रौपदी ने ये वाक्य कहे, तो कर्ण क्रोधित होकर अपने स्थान पर जा बैठे। जब कोई क्षत्रिय ऐसा न रहा जो मछली के नेत्र को छेद सकता, तो राजा द्रुपद ने सभी को ललकार कर अनेक बातें कही। ऐसा सुनकर अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि अब नहीं रहा जाता।

अर्जुन ने कर्ण के त्यागे हुए शस्त्रों से ही मछली के नेत्र का छेदन कर दिया। द्रौपदी ने अर्जुन के गले में माला डाल दी। इस प्रकार अर्जुन का विवाह द्रौपदी के साथ हो गया।

पाँचों पाण्डवों की अपनी-अपनी पत्नी थी। पाँचों अपने-अपने कक्ष में रहते थे। धर्मराज युधिष्ठिर का विवाह महाराजा श्वेतकेतु की कन्या से, भीम का हिडम्बा से, नकुल का देवनाग ऋषि की कन्या से और सहदेव का अवधूत नाम के राजा की कन्या रोहिणी से हुआ था।

आधुनिक काल में इतिहास में आई अशुद्धता के कारण द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों की पत्नी कहा जाता है। वस्तुतः पाँच पतियां का अभिप्राय यह है कि पति उसे कहते हैं जो रक्षा करने वाला हो। पाँचों ही द्रौपदी की रक्षा करते थे। बनवास के १२ वर्षों में द्रौपदी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई पाण्डवों के साथ रही। उसने अपने पति के भाइयों या अन्य किसी भी पुरुष को पिता या पुत्र के दृष्टिकोण से ही देखा। पति के चारां भाइयों ने भी उसकी रक्षा पुत्री भाव या मातृ भाव से ही की।

द्रौपदी सदैव कला कौशल करती रहती थी। कला में वह पारायण थी। उसके बदले जो द्रव्य आता था, उससे जीवन का निर्वाह करती थी। माता कुन्ती ने द्रौपदी से यह कहा कि हे पुत्री! तुम ऐसा क्यों करती हो? द्रौपदी ने कहा, इससे मेरा मन पवित्र होता है। मैं अपने मन को पवित्र रखना चाहती हूँ। जो यह तुम्हारा राष्ट्र है, यह अशुद्ध बन गया है। इस हस्तिनापुर की स्थली में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। अतः मेरे कार्य में बाधक मत बनो। द्रौपदी भयंकर वनों में रही, वहाँ भी स्वयं परिश्रम करती थी।

भयंकर वनों में भी द्रौपदी ऋषि-मुनियों की सेवा करती रहती थी। कोई भी अतिथि आता, ऋषि-मुनि आते तो फल व कन्द-मूल उन्हें अर्पण करके प्रसन्न होती रहती थी। जो अपने में सदैव प्रसन्न रहने वाली होती है, उसके गृह में सदा प्रसन्नता रहती है। हमारे आचार्यों ने वैदिक साहित्य में संकल्प-शक्ति को एक महान शक्ति माना है। द्रौपदी संकल्प शक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही।

आध्यात्मिक द्रौपदी और भगवान श्रीकृष्ण को भविष्य की बात का ज्ञान हो जाता था। कौरवां का यह विचार बन गया कि पाण्डवों को कैसे विजय किया जाए? उन्होंने युधिष्ठिर से जुआ खेलने की योजना बना ली।

स्वभाव से युधिष्ठिर भोले-भाले थे। दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि को जुए में आगे करके द्रौपदी समेत सब कुछ जीत लिया। जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियाँ भी परिवर्तित हो जाती हैं। अगले दिवस दुर्योधन ने अपने विधाता जरयोधन (दुःशासन) से कहा, जाओ! पांचाली को ले आओ। मैं उसे नग्न दृष्टिपात करूँगा। महारानी गान्धारी, माता कुन्ती, देवव्रत भीष्म, पाँचों पाण्डव और सब आर्यवर विद्यमान थे।

सभा में लाने के पश्चात् किसी का यह साहस नहीं बना कि द्रौपदी के वस्त्रों को कोई छू भी सके। द्रौपदी ने कहा, "जहां देवव्रत जैसे पितामह विद्यमान हों, द्रोणाचार्य जैसे विद्यमान हां, उन सबके रक्त में दूषितपना आ गया है। जहाँ मेरे पति सहित पाँचों विधाता विद्यमान हों उनके रक्त में निराशा आ गई है। आज इस समय मुझे प्रतीत हो रहा है, हे दुर्योधन! कि हस्तिनापुर की स्थली पर अग्नि की वृष्टि होने वाली है।" भरी सभा में से सब अपने-अपने गृह को प्रस्थान कर गये। हस्तिनापुर की स्थली पर कोई प्राणी ऐसा नहीं था जो उसके वस्त्रों को स्पर्श करने वाला हो।

महाभारत के संग्राम के पश्चात् भीष्म पितामह शरशैया (बाण-शैया) पर थे। इस अवस्था में भी वे पाण्डवों और उनके परिवारजनों को उपदेश देते रहते थे। वे ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की चर्चाएं करते रहते थे। एक दिन जब उपदेश दे रहे थे तो द्रौपदी ने कहा, "हे पितामह! एक प्रश्न मैं भी आपसे जानना चाहती हूँ। जिस समय दुर्योधन ने भरी सभा में मुझे नग्न करना चाहा, तो आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि अनेक बुद्धिमानों ने सभा में उपस्थित होते हुए भी मेरी रक्षा नहीं की, उस समय आपका ब्रह्मज्ञान और तप कहाँ चला गया था? भीष्म पितामह बोले, "हे पुत्री! उस समय मैं क्या कर सकता था? द्रौपदी ने कहा, "आप सब कुछ कर सकते थे। आप राष्ट्रपिता थे। राष्ट्रपिता क्या नहीं कर सकता?"

भीष्म पितामह ने कहा, "हे पुत्री! मैंने राष्ट्रीय अन्न खाया था। राष्ट्रीय अन्न मेरी मनोभावनाओं में ओतप्रोत था। उस अन्न को खाकर मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई थी। अर्जुन के तीखे बाणों से जितना मेरे शरीर से रक्त बह रहा है, उतना ही विशुद्ध मेरा विचार बन रहा है। मैंने ब्रह्मज्ञान पाकर अपने पिता के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और विवाह नहीं कराऊँगा। उस समय मैं स्वयं मामूली-सी कृषि करता था, उसका अन्न खाता था। योगाभ्यास द्वारा मैंने ब्रह्मज्ञान पाया था, परन्तु जब राष्ट्रीय अन्न खाने लगा तो मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई। अब मेरी बुद्धि सात्विक बन रही है। तुम्हारा अन्न पवित्र है। इस अन्न में इतनी महान शक्ति है कि मेरे विचार पवित्र बन रहे हैं।"

द्रौपदी तपस्विनी थी। ऋषि-मुनि भी उसका आदर करते थे। वह वेदों पर विचार-विनिमय करती रहती थी। भगवान श्रीकृष्ण उन्हें अपनी पूज्या मानते थे और जब भी द्रौपदी से मिलते थे उनके चरणों को स्पर्श करते थे। यह उसके तप का प्रभाव था।

जिसमें तप नहीं होता, उसका कोई आदर नहीं करता। द्रौपदी अपने पिछले सात जन्मों के विषय में

जानती थी। उसे स्मरण था कि वह पिछले जन्मों में क्या-क्या रही? वह महान विदुषी थी।

- **जो जिसके निकट जाता है उसके परमाणुओं उसमें आ जाते हैं।**
- **जीवन श्वासों पर आधारित है।**
- **योगाभ्यास से चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक आयु हो सकती है।**
- **जीवात्मा ज्ञान के द्वारा प्रभु को जान लेता है और प्रयत्न के द्वारा उसमें रमण करता रहता है।**
- **आत्मा का भोजन ज्ञान और आभूषण यज्ञ है।**
- **जिन कार्यों को करने से मानव के हृदय की गति तीव्र हो जाये वह कार्य अधर्म है और जिन कार्यों के करने से हृदय की गति मन्द हो, सामान्य होती है, वह कार्य कर्त्तव्यवाद में होता है।**

१९दानवीर कर्ण का वध

कर्ण और अर्जुन दोनों का संग्राम हुआ। महाराजा शल्य को कर्ण का सारथी नियुक्त किया गया, तो उस समय भगवान कृष्ण और अर्जुन को यह प्रतीत हुआ कि शल्य कर्ण का सारथी बन रहा है। कर्ण का सारथी कौन है? महाराजा शल्य, जो माद्री का विधाता कहलाता था। दोनों कृष्ण और अर्जुन को जब यह प्रतीत हुआ तो भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों उनके समीप पहुँचे। उन्होंने कहा हे शल्य! तुम कर्ण के सारथी बन रहे हो, परन्तु तुम कर्ण के साथ क्यों अपनी आभा प्रकट कर रहे हो? महाराजा शल्य ने कहा, अब मैं बन गया हूँ तो सारथी तो बनूँगा, परन्तु तुम जो चाहते हो उच्चारण करो। भगवान कृष्ण बुद्धिमान थे। उन्होंने कहा, शल्य आप एक कार्य कर सकते हैं। आप कर्ण को साहस न देना। उनसे निराशा की वार्त्ता प्रकट करते रहना, जिससे वह हताश होते रहें। यह मेरी इच्छा है। महाराजा शल्य ने ऐसा ही किया।

जब कर्ण रथ में विद्यमान हुआ, तो शल्य कहता है, हे कर्ण! मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारी आज मृत्यु होगी। उन्होंने कहा-क्या उच्चारण कर रहे हो? मैं बलिष्ठ हूँ, अर्जुन जैसे कितने ही रथी आ जाएँ वह भी मेरे लिए कुछ नहीं हैं। पुनः शल्य ने कहा, हे कर्ण! तुम्हारी मृत्यु है आज। वह उससे निराशा की वार्त्ता प्रकट करता रहा। संग्राम होने लगा। कर्ण के रथ के चक्रों (पहियों) में कुछ अप्रीति हो गई। वह अग्रणीय न बन रहे थे उस समय कर्ण ने कहा हे शल्य! रथ के जो चक्र हैं उनको बाहर करो। उन्होंने कहा, मैं राजा हूँ। मैं तुम्हारा सारथी बन गया हूँ परन्तु यह मेरा कार्य नहीं है। तुम सूतपुत्र हो। जब उन्होंने ऐसा कहा तो कर्ण रथ से नीचे आकर जब चक्रों को बाहर करने लगे तो कृष्ण जी ने कहा, हे अर्जुन! अब समय है इसकी मृत्यु का। शस्त्रों की, बाणों की वर्षा होने लगी उसका शरीर छेदन होने लगा। उस समय कर्ण ने कहा, हे अर्जुन, मेरी भुजाओं में कोई शस्त्र नहीं है और तुम मुझे मृत्यु को पहुँचा रहे हो। उस समय भगवान कृष्ण कहते हैं, हे कर्ण! उस समय तुम कहाँ थे जब अभिमन्यु को निहत्थे तुमने नष्ट किया। उसकी भुजाओं में भी कोई अस्त्र नहीं था। आज तुम्हें अपना शरीर, अपने प्राण इतने प्रिय हैं। अर्जुन बाणों की वृष्टि करता हुआ शान्त हो गया। कृष्ण जी बोले, हे अर्जुन! क्यों? उन्होंने कहा, इसकी भुजाओं में कोई शस्त्र नहीं है। कृष्ण ने कहा, तुम्हारी मृत्यु आ रही है। आज तुम मृत्यु को अपने समीप लाना चाहते हो। परन्तु यहाँ शल्य कह रहा था, कर्ण मृत्यु आ गई। अर्जुन पुनः अस्त्रों की वर्षा करने लगा परिणाम यह हुआ कि कर्ण की मृत्यु हो गयी।

ऐसी कौन सी आभा है जो मानव के अन्तःकरण को छेदन कर देती है। वह निराशा है। एक मानव निराशा में रहे और एक प्राणी आशा में रहे। तो निराशावादी की मृत्यु बहुत शीघ्र होती चली जाती है। जबकि आशावादी का प्राण उसका साथ देता है। ऋषियों ने इस वाक्य पर अनुसंधान किया कि निराशा में कैसे मृत्यु है और उल्लास में कैसे जीवन प्राप्त होता है?

- **जो सत्य का पालन करता है, उसके समीप सात्विक प्राणी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।**
- **प्राण-शक्ति के सूक्ष्म हो जाने पर मानव रूग्ण हो जाता है।**
- **हिंसा ही मानव की मृत्यु है और रक्षा ही मानव का जीवन है।**
- **जब स्वार्थवाद नहीं रहता तो मानव एक-दूसरे से स्नेह करने लगता है।**
- **स्वार्थवाद में ही कठोरता आती है।**
- **प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए।**
- **राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए रूढ़ियों का त्याग होना चाहिए।**

- **परमात्मा एक है, आत्मा अनेक।**

२०धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत काल तक सारे विश्व में वैदिक संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार था। लोग धर्म के लक्षण जानते और मानते थे। मनुस्मृति में धर्म के निम्नलिखित दश लक्षण बताए हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् सदा धैर्य रखनाऋ क्षमा करने की प्रवृति व द्वन्द्व सहन करना, मन को सदा धर्म में प्रवृत रखना, चोरी त्याग, रागद्वेष व पक्षपात छोड़कर भीतर की व जल से बाहर की सफाई, इन्द्रियों को संयमित रखना, बुद्धि को शुभ कार्यों में लगाना, यथार्थ ज्ञान, सत्य पर चलना व क्रोध छोड़कर शान्ति आदि गुणों का ग्रहण करना।

धर्म के चार स्तम्भ माने जाते हैं- सत्य, तप, दया और दान। मानवता को ही धर्म कहते हैं। जिसका जीवन धर्म में पिरोया हुआ हो, उसको मानवता कहते हैं। मानव वह होता है जो मननशील होता है।

आजकल धार्मिकता होते हुए भी लोग सुखी नहीं हैं। इसका पहला कारण यह है कि संसार में स्वार्थवाद की वृद्धि होने के कारण आन्तरिक संघर्ष आता जा रहा है। दूसरा कारण यह है कि धार्मिकता विचारों में तो है किन्तु उसका अनुकरण तथा आचरण नहीं किया जाता। संसार में विद्वान तो बहुत होते हैं किन्तु उसको अपने क्रियात्मक जीवन में लाने वाले सूक्ष्म होते हैं।

वैदिक साहित्य में धर्म एकवचन माना गया है। धर्म का कदापि विभाजन नहीं होता। मानव मात्र का केवल एक ही धर्म है जिसे वेद कहते हैं। वेद नाम, ज्ञान अथवा प्रकाश का है। अन्धकार को त्यागकर प्रकाश में जाना ही धर्म माना गया है। वेद में सम्प्रदायवाद नहीं होता क्योंकि वेद ईश्वर का ज्ञान कहलाया गया है। आदि सृष्टि में चारों वेदों का ज्ञान 'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद' क्रमशः ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को दिया। धर्म हमेशा एक रस रहता है। सम्प्रदायों में भिन्नता और संकीर्णता होती है जबकि धर्म में व्यापकता होती है। सम्प्रदाय वहाँ आ जाता है जब एक ही महापुरुष अथवा ऋषि के वाक्य को सार्वभौम स्वीकार कर लिया जाता है। सम्प्रदाय चलने का नाम ही रूढ़ि है। एक ही व्यक्ति के पीछे लगने व चलने वाले सभी सम्प्रदायवादी होते हैं।

जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने एक ही धर्म की विवेचना की है। सुकेतु ऋषि ने स्वाति ऋषि को लोक-लोकान्तर का वर्णन करते हुए बताया था कि किसी लोक में जाओ 'धर्म एक ही है'। इन्द्रियों को संयम में लाने का नाम धर्म है। सत्य ही धर्म का मूल है तथा धर्म की आभा है। 'धर्म' ऐसा शब्द है जैसे वायु सब के लिए समान है। सूर्य का प्रकाश सबके लिए है। अपने कर्त्तव्य को पालन करने का नाम धर्म है। सत्य को सत्य और मिथ्या को मिथ्या कहा जाए, इसी का नाम धर्म है। सत्य-असत्य को जानना मानव का सबसे बड़ा धर्म है।

परमात्मा के नियम तथा यौगिक नियम बुद्धि से परे हैं, उनको जानने के लिये अनुभव व योगाभ्यास की आवश्यकता है। जीवन को उच्च बनाकर आत्मा-रूपी दर्पण पर आए नाना प्रकार के मलों को नष्ट करना है। सत्य को विचारने के लिए अपने को सत्य बनाना आवश्यक है। यदि हम सत्य नहीं तो हम सत्य का निर्णय कभी नहीं कर सकते।

मानव का 'अहिंसा' परम धर्म है। जब मानव की हार्दिक वेदना होती है कि मैं पाप नहीं करना चाहता तो उसके हृदय के विचार वायुमण्डल में जाते हैं। तब जंगली जानवर भी अपना हिंसा का भाव त्यागकर समीप

आ जाते हैं। यही कारण था कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों के आश्रम में सभी जंगली जानवर हिंसा भाव त्यागकर, साथ-साथ विचरण करते थे। इससे सिद्ध होता है, आत्मा का सबसे बड़ा धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" है।

महाभारत काल के पश्चात् अज्ञानतावश एवं स्वार्थवश धर्म का रूप संकुचित कर दिया गया। यज्ञों में अर्थ का अनर्थ करके हिंसा करना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम-स्वरूप लोग वेदों से दूर होने लगे और वेद-विद्या लुप्त होती गई। सर्वप्रथम स्वामी महावीर "अहिंसा परमो धर्मः" का नाद लेकर चले। यह वेद का सिद्धान्त है। महात्मा बुद्ध भी यही नाद लेकर चले। सांसारिक ऐश्वर्य को त्यागकर अनेक राष्ट्रों में प्रचार किया।

जब दुराचार बढ़ने लगा तो लगभग २२०० वर्ष पूर्व स्वामी शंकराचार्य उत्पन्न हुए। उन्होंने १२ वर्ष की आयु में ही अपनी माता जी से कहा, 'मैं वेद-विद्या द्वारा संसार को जगाना चाहता हूँ।' वेदान्त को लेकर चले। आगे चलकर उनकी मान्यता वाले इतने गम्भीर विषयों पर न जा करके रूढ़िवाद में चले जाएँ, तो उसमें वेद का दोष नहीं है।

इसके पश्चात् अन्य किसी द्वितीय देश में 'ईसा मसीह' उत्पन्न हुए। उन्होंने भारतवर्ष में आकर काशी नगरी में विरंडी नाम के आचार्य से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपने देश में जाकर अनेक कुरीतियों का खण्डन किया जिसके फलस्वरूप उनके विरोधियों ने उन्हें सलीब पर लटका दिया। घायल अवस्था में ही इनके शिष्य इन्हें किसी तरह कश्मीर में ले आये। यहीं पर बाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

हज़रत मोहम्मद की जहाँ जन्म-भूमि थी, वहाँ मद्य (मदिरा) को पान करना, पाषाण-मूर्तियों की पूजा करना और ऋण पर अधिक ब्याज लेना आदि अनेक बुराइयाँ थी। मोहम्मद साहब ने उन्हें दूर करने का आदेश दिया। राष्ट्रवाद में अधिक प्रवृति के कारण, इनके अनुयाइयों ने दूर-दूर तक मार-काट करके अपना शासन बढ़ाने के लिए अनेक अत्याचार किये।

इसके पश्चात् भारतवर्ष में लगभग ५०० वर्ष, महात्मा नानक उत्पन्न हुए। उन्होंने कहा, 'किसी मानव को किसी जीव का हनन नहीं करना चाहिए। मानवता ऊँची होनी चाहिए'।

सन् १८२४ में गुजरात प्रदेश के टंकारा नामक स्थान पर महर्षि दयानन्द पैदा हुए। महर्षि दयानन्द वेद के सन्देश, त्रैतवाद तथा वेद के प्रत्येक अंग को लेकर चले। अपने ५९ वर्ष के जीवन में महर्षि ने देश के सुप्त लोगों को जगाया और पुनः वेदों को स्थापित किया। समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियां को दूर करने का प्रयत्न किया। स्वतन्त्रता का बीज बोने वाले महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और सभी सम्प्रदायों को एकत्रित करने का प्रयास किया। महर्षि दिव्य पुरुष थे। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ करके पाखण्ड और अन्धविश्वास को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि स्वामी महावीर से पहले जैन सम्प्रदाय, महात्मा बुद्ध से पहले बौद्ध सम्प्रदाय, ईसा मसीह से पहले ईसाई सम्प्रदाय, हज़रत मोहम्मद से पहले मुस्लिम सम्प्रदाय और गुरू नानक से पहले सिक्ख सम्प्रदाय भी नहीं था। हिन्दू सम्प्रदाय भी लगभग २५०० वर्ष पूर्व नहीं था क्योंकि हिन्दू भी सम्प्रदाय है, धर्म नहीं।

पूर्व काल में सभी लोग वेदों को जानते और मानते थे। वैदिकता का प्रचार और प्रसार सारी दुनिया में था। महापुरुषों का तो एक ही विचार होता है कि अच्छाइयों को लाने का प्रयास करो तथा कुरीतियां को नष्ट करो। ऐसा ही विचार उपरोक्त सभी महापुरुषों का था।

बाद में सभी महापुरुषों के अनुयाइयों ने अपने-अपने सम्प्रदाय बना लिए हैं। केवल एक महापुरुष को ही मानने वाले लोग सम्प्रदायवादी होते हैं। कुछ लोग तो अपने-अपने महापुरुष को परमात्मा ही मानने लगते हैं। किसी भी ऋषि, मुनि अथवा महापुरुष को परमात्मा कहना असंगत है। महान माताएँ जो तप और त्याग की मूर्ति होती हैं, महापुरुष उत्पन्न किया करती हैं। परमात्मा निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है।

सम्प्रदाय चलने से रक्त-भरी क्रान्तियाँ आती हैं क्योंकि सम्प्रदाय में संकीर्णता और स्वार्थ होता है। प्राचीन काल में विद्वान लोग सम्प्रदाय नहीं बनने देते थे। महाभारत काल में 'नाग' सम्प्रदाय अलग बन गया था जिसे भगवान श्रीकृष्णजी ने समुद्र तट पर स्थित कालीदेह नामक स्थान पर पुनः वैदिक संस्कृति में मिला दिया था।

आज सरकार का कर्त्तव्य है कि सभी सम्प्रदायों अथवा रूढ़ियों के आचार्यों को एक स्थान पर एकत्रित करें और उनसे धर्म के ऊपर शास्त्रार्थ और विचार-विमर्श करवाए। आधुनिक युग में विभिन्न सम्प्रदायों का इनके मूल में एकीकरण किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्र में शुद्ध आहार तथा सदाचार का नियम बना देना चाहिए, जिससे किसी भी जीव का भक्षण न हो। मनुष्यों ने वेद का विचार त्याग कर सम्प्रदायों में अपने को विभक्त कर लिया है। इनका एकीकरण वेद-विद्या के प्रचार एवं प्रसार द्वारा ही सम्भव है।

२१ अंतरिक्ष, एक कल्पवृक्ष

अन्तरिक्ष परमाणुओं का समूह है। इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु है, महान से महान है और क्लिष्ट से क्लिष्ट भी है। जो मानव अपने को तथा अपने गृहस्थ को जैसा बनाना चाहता है, उसी प्रकार के परमाणु अन्तरिक्ष से आने प्रारम्भ हो जाते हैं। जो मानव क्रोध करता है तो उसे क्रोध आने लगता है क्योंकि क्रोध के परमाणु ही उसके समीप अधिक आने लगते हैं। 'नाग' नाम का प्राण इन्हें अपने में रमण करता रहता है। ऋषि-मुनियों ने अन्तरिक्ष को एक प्रकार का कल्पवृक्ष कहा है। मानव जैसी कल्पना करता है, जैसे उसके विचार होते हैं, उसी के अनुसार अन्तरिक्ष से वैसे ही परमाणु आने आरम्भ हो जाते हैं। जैसे-

१. यदि एक आत्म-विश्वासी मानव 'अहिंसा परमो धर्मः' को मानता है तो उसमें इतना तेज और ओज आ जाता है कि वायुमंडल में अहिंसा परमो धर्मः के विचरण करने वाले परमाणु उसके निकट आने लगते हैं। ऐसा मानव जहां अपने वाक्य उच्चारण करता है, वहां का वायुमंडल शुद्ध हो जाता है। हिंसक प्राणी भी हिंसा का भाव त्याग कर उसके समीप आ जाते हैं।

२. यदि किसी के घर में कलह रहने लगती है तो वहां वायुमंडल से कलह के परमाणु आने लगते हैं। ऐसा घर कलह का केन्द्र बन जाता है। उसको नरक की संज्ञा दी जा सकती है। अतः सुखी गृहस्थी बनने के लिए यह आवश्यक है कि उस घर का वायुमंडल सात्विक और पवित्र हो।

३. यदि कोई मानव लालच के वशीभूत होकर कृपण हो जाता है तो अन्तरिक्ष से कृपणता के परमाणु उसके समीप आने लगते हैं। उसकी कृपणता बढ़ जाती है।

४. यदि कोई प्राणी वासना में रत्त होकर कामी बनना चाहता है तो उसके पास वायुमंडल से वासना के परमाणु आने आरम्भ हो जाते हैं। वासना (कामना) ही वासना उसे प्रतीत होने लगती है।

५. यदि कोई मानव अनाचार से अधिक धनवान बन जाता है तो उसे आत्मिक शान्ति नहीं मिलती। उसके अनाचार उसके अन्तःकरण को छूते रहते हैं और उसको दुखित करते रहते हैं। ऐसा मानव व्याकुल हो जाता है और उसका अन्तःकरण भ्रष्ट हो जाता है।

हमारे शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दो नाड़ियाँ हैं। किसी भी नाड़ी में मानव द्वारा प्राप्त ज्ञान का भंडार संचित नहीं होता। विचार करने से पता लगता है कि इस शरीर में ज्ञान प्राप्त करने के यंत्र लगे हुए हैं जिनका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से होता है। कान वाक्यों को अन्तरिक्ष से लेते हैं और उनको विचारधाराओं में ले जाते हैं।

सतयुग के काल में महर्षि श्रृंगी जी ने अपने गुरू ब्रह्मा जी से पूछा था कि यह जो अन्तरिक्ष हमें प्रतीत हो रहा है, क्या यह अन्तरिक्ष मानव के हृदय में भी होता है? ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया यह अन्तरिक्ष हृदय में भी है क्योंकि शरीर तो ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप है। जैसा यह ब्रह्माण्ड है वैसा ही यह पिंड (शरीर) कहलाया गया है। जैसे इस लोक में गति हो रही है और अन्तरिक्ष अपना कार्य कर रहा है, इसमें नाना परमाणु भ्रमण कर रहे हैं, वैसे ही हमारे इस मानव शरीर में भी अन्तरिक्ष होता है। यदि शरीर में अन्तरिक्ष नहीं हो तो मानव एक भी वाक्य उच्चारण नहीं कर सकता है।

हृदय से या वाणी से कहा गया अशुद्ध वाक्य अन्तरिक्ष की तरंगां में इस प्रकार तरंगित होता है कि वह जल की धाराओं में रमण करने लगता है या वायु की तरंगों में तरंगित हो जाता है। वहीं अशुद्ध वाक्य अतिवृष्टि, अनावृष्टि या रक्त-भरी क्रान्तियों में बदल कर समाज में स्वतः आ जाता है। अतः हमें कोई भी अशुद्ध

वाक्य सोचना या बोलना नहीं चाहिए।

- **मन तभी पवित्र बन सकता है जब अन्न पवित्र होगा।**
- **मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम साधना है।**
- **अन्न-दोष से साधना नष्ट हो जाती है।**
- **मन की गति स्थिर हुए बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता।**
- **मस्तिष्क का सम्बन्ध अन्तःकरण के संस्कारों तथा प्रवृत्तियों से होता है।**
- **आत्मा के लिए संसार रचा जाता है, रचने वाला प्रभु है और रची जाने वाली प्रकृति है।**

२२दीन राजा

एक राजा था। उसके राष्ट्र में कोई भी एक दूसरे का ऋणी नहीं था। राजा नित्य-प्रति अपनी प्रजा में भ्रमण किया करता था और देखता था कि मेरे राष्ट्र में कोई दुःखी तो नहीं है। एक दिन राजा अपने कुछ सेवकों सहित राष्ट्र का भ्रमण कर रहा था तो मार्ग में उन्होंने एक साधु की कुटिया देखी। कुटिया में जाकर उन्होंने देखा कि साधु के पास न खान-पान की सामग्री है, न कोई पात्र है, न कोई वस्त्र है और न कोई विश्राम करने का आसन है।

अपने निवास स्थान पर आकर राजा ने अपने मन में सोचा, 'तू कितना अयोग्य राजा है? तेरे राष्ट्र में ऐसा दीन साधु रहता है'। राजा ने अपने सेवकों को बुलाया और दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा देकर कहा कि इन्हें मार्ग में रहने वाले उस साधु को दे आओ। मुद्रा लेकर सेवक साधु के द्वार पर पहुँचे और उसे मुद्रा लेने को कहा। साधु ने उत्तर दिया कि मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है, इन्हें किसी दीन (गरीब) व्यक्ति को दे देना। जब साधु ने ऐसा कहा तो सेवकों ने समझा कि कम मान कर नहीं ले रहा है। सेवक मुद्रा लेकर राजा के द्वार पर जा पहुँचे और कहा, "महाराज! वह तो इन्हें नहीं ले रहा है।"

तब राजा ने पच्चीस हजार स्वर्ण मुद्रा देकर पुनः साधु के पास भेज दिया। सेवकों ने साधु से कहा कि अब तो लो। साधु ने कहा कि अपने राष्ट्र के किसी दीन व्यक्ति को दे दो। सेवकां ने समझा कि यह तो अब भी 'कम हैं' ऐसा मान रहा है। वे वापिस राजा के समक्ष जा पहुँचे और कहा कि अब भी वह साधु नहीं ले रहा है। राजा ने सेवकों को एक लाख स्वर्ण मुद्रा देकर साधु के पास भेजा, सेवकों को साधु का वही उत्तर मिला कि किसी दीन व्यक्ति को दे दो। उन्होंने राजा के समक्ष आकर कहा कि अब भी वह नहीं ले रहा है। राजा आश्चर्यचकित हो गया और स्वयं पच्चीस लाख स्वर्ण मुद्रा लेकर साधु के समीप पहुँचा और साधु से स्वर्ण मुद्रा लेने की प्रार्थना की।

साधु ने कहा कि राजन्! मैंने कई बार कहा है कि इन्हें किसी दीन व्यक्ति को दे दो। राजा ने कहा कि आपसे दीन मेरे राष्ट्र में कोई नहीं है।

साधु ने उत्तर दिया कि मैं दीन नहीं हूँऋ मैं तो राजाओं का भी राजा हूँ। राजा ने कहा, "आपके पास सेना कहाँ है?" साधु ने उत्तर दिया कि संसार में मेरा कोई शत्रु नहीं है। जब मेरा शत्रु ही नहीं तो मुझे सेना की भी आवश्यकता नहीं। राजा ने कहा, "चलो, शत्रु तो नहीं, परन्तु राष्ट्र को चलाने के लिए द्रव्य (धन) कहाँ है?" साधु ने कहा कि राजन्! मेरे पास ऐसा रसायन है जिससे मैं पर्वतां का स्वर्ण बना देता हूँ और इस स्वर्ण से अपने राष्ट्र का कार्य किया करता हूँ। राजा ने जान (समझ) लिया कि इसके पास अवश्य कोई रसायन है। यदि रसायन न होता तो इतने द्रव्य को कौन त्यागता?

सायंकाल हो चुका था। राजा वहाँ से अपने निवास स्थान पर जा पहुँचा। स्नान करने के पश्चात् भोजन किया और विश्राम गृह में विश्राम करने लगा। रात्रि हो चुकी थी। राजा के मन में विचार आया कि तू साधु के पास चल। तुझे कोई देख भी नहीं रहा है। उस रसायन से दस बीस सहस्र मन स्वर्ण बनवा ले। ऐसा सोच कर रात्रि के अन्धेरे में साधु की कुटिया के पास जा पहुँचा। साधु ने जब पगों की खटखट सुनी, तो कहा कि कौन है? राजा ने कहा कि प्रभु! आपका सेवक राजा हूँ। साधु ने कहा कि राजन्! किस कारण आए हो? राजा ने कहा कि उस रसायन से, जो आपके पास है, दस-बीस सहस्र मन स्वर्ण बनवाने आया हूँ। कृपा करके स्वर्ण बना दीजिए। साधु ने कहा कि राजन्! बोलो, दीन तुम हो या मैं हूँ। "अब शीघ्र ही कृपा कीजिए, दीन तो मैं ही

हूँ," राजा ने कहा।

जब राजा ने ऐसा कहा तो साधु बोला, "अच्छा राजन्! तुम नित्य-प्रति हमारे पास आया करो, हम तुम्हारा अवश्य स्वर्ण बना देंगे।" राजा ने साधु के वचनों को मान लिया और साधु के पास नित्य-प्रति आना प्रारम्भ कर दिया। समय व्यतीत होने के साथ-साथ साधु ने राजा को आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का पूर्ण ज्ञान करा दिया। राजा का अन्तःकरण पवित्र हो गया। साधु के आदेशों को मानते हुए राजा को लगभग एक वर्ष हो गया। साधु ने अपने योगबल से देखा कि राजा के अन्तःकरण में अब कोई त्रुटि नहीं थी। दीनता, लोभ व लालच उसके अन्तःकरण में नहीं थे।

उचित दिन देखकर साधु ने राजा से कहा, राजन्! आज हम तुम्हारा स्वर्ण बना देंगे, बोलो कितना स्वर्ण चाहते हो?" राजा ने कहा, "भगवन्! जो स्वर्ण आप मेरा बनाना चाहते थे, वह स्वर्ण मेरा बन चुका। जब मनुष्य को ज्ञान और विवेक हो जाता है तो उसे संसार की कोई भी इच्छा नहीं रहती। वह पवित्र बन जाता है और संसार से पार हो जाता है।

- **त्रैतवाद ही यथार्थ सिद्धान्त है।**
- **सशक्त पवित्र आत्म-चेतना से पशुओं का आत्मा भी प्रभावित होता है।**
- **जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु भोगों में परतन्त्र है।**
- **परमात्मा और प्रकृति के मध्य रहने वाली आत्माओं की गणना अनन्त है।**
- **परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' है।**
- **किसी भी महापुरुष को परमात्मा मानना सर्वथा असंगत है।**

२३वैरागी महात्मा

एक राजा था। एक दिन वह अपने राष्ट्र में भ्रमण कर रहा था तो उसके मन में एक कल्पना जागी कि उसके पास एक सुनहरी छड़ी होनी चाहिए। उसने शिल्पकारों को बुलाकर कहा कि तुम मेरे लिए एक छड़ी बनाओ जो मेरे भुजां में सुशोभित हो।

शिल्पकारों ने कई सौ मणियों से गुंथकर एक छड़ी बनाई और राजा को अर्पित कर दी। राजा को वह छड़ी बड़ी प्रिय लगी। एक दिन राजा छड़ी को लेकर पर्वतों पर भ्रमण के लिए पहुँच गया। सायंकाल नगर की ओर आ रहा था तो श्मशान भूमि के पास एक वैरागी महात्मा को देखा। राजा उसके समीप पहुँचा और कहने लगा कि हे महात्मा! तुम यहाँ क्या कर रहे हो? मेरे नगर में चलो। वैरागी महात्मा ने उत्तर दिया कि महाराज! आपके नगर में जो हैं, वे भी एक दिन यहीं आ जायेंगे, मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा? राजा ने सोचा, यह साधु तो बड़ा मूर्ख है। उसने साधु से कहा, अरे साधु! ले, इस छड़ी को ले और यह उसको दे देना जो तुमसे अधिक मूर्ख हो। साधु ने छड़ी को स्वीकार कर लिया और राजा अपने नगर में जा पहुँचा।

राजा अपने राष्ट्र का पालन करता रहा और करते-करते वह समय आ गया जब वह मृत्यु-शैय्या पर स्थिर हो गया। मृत्यु में कुछ ही समय शेष रह रहा था। श्मशान भूमि में रहने वाले महात्मा ने अपने योगबल से देखा कि आज राजा मृत्यु को प्राप्त होने जा रहा है। महात्मा उस छड़ी को लेकर राजा के समीप आ पहुँचा। राजा ने साधु को देखकर कहा, अरे मूर्ख साधु! अभी तक यह छड़ी तुम ने किसी को नहीं दी। साधु ने कहा कि प्रभु! मुझे अपने से मूर्ख कोई मिला ही नहीं जिसे मैं यह छड़ी देता। हे राजन्! अब आप कहाँ जा रहे हैं? राजा ने कहा कि मैं बहुत बड़ी यात्रा पर जा रहा हूँ। यह मुझे ज्ञात नहीं कि जाऊँगा कहाँ? वैरागी महात्मा ने कहा कि राजन्! जब आप इतनी बड़ी यात्रा पर जा रहे हैं तो कितनी सेना साथ ले जाएंगे? राजा ने कहा कि अरे साधु! मैं तो आपको मूर्ख कह चुका हूँ, इस अन्तिम यात्रा में यह सेना मेरे साथ नहीं जाएगी। साधु ने कहा कि राजन्! सेना नहीं ले जाओगे तो यह मन्त्री तो अवश्य आपकी आज्ञा पालन करने के लिए जाएगा। राजा ने कहा कि यह मन्त्री भी साथ नहीं जाएगा। साधु ने कहा, मन्त्री नहीं जाएगा तो आपके द्वारा एकत्रित द्रव्य (धन) तो अवश्य साथ जाएगा। राजा ने कहा, अरे मूर्ख साधु! इस यात्रा में यह द्रव्य (धन) भी मेरे साथ नहीं जाएगा।

साधु ने कहा कि राजन्! आपकी पत्नी तो अवश्य साथ जाएगी। राजा ने कहा कि यह पत्नी भी साथ नहीं जाएगी और पुत्र भी साथ नहीं जाएगा। साधु ने कहा कि राजन्! ये बड़े-बड़े महल जो आपने बनवाए हैं, ये तो आपके साथ अवश्य जाएंगे। राजा ने कहा कि अरे महामूर्ख! मेरे साथ कुछ भी नहीं जाएगा। वैरागी महात्मा ने राजा से कहा कि अरे! ले अपनी छड़ी को, मेरे से मूर्ख तो तू है संसार में। आज तक वे कर्म तो किए नहीं जो तेरे साथ जाते। आपने जो कर्म सारा जीवन किए, वे यहाँ के यहाँ रह गए।

राजा ने महात्मा के वाक्यों को स्वीकार कर लिया और कहा, प्रभु! मैंने वह कर्म कभी नहीं किया जो मेरे साथ जाताऋ मुझे क्षमा करो, मैं महापापी हूँ। ऋषि, मुनि और महात्मा बड़े दयालु होते हैं। महात्मा तथास्तु कहकर अपने आश्रम में श्मशान भूमि के पास चले गए। राजा मृत्यु को प्राप्त हो गया।

मानव को ऐसे कर्म करने चाहिए कि जब वह संसार से जाए तो वे कर्म उसके साथ जाएँ। इस भौतिक पिण्ड में आकर वे कर्म भी करो जो कर्म इस पिण्ड (शरीर) को त्यागते समय तुम्हारे साथ जाएँ। वे कर्म हैं- परमात्मा का चिन्तन करना, अपने आपको सदाचारी बनाना और प्रभु को सर्वव्यापक मानकर कोई पाप न करना।

२४ वृक्षों एवं वनस्पतियों में जीवात्मा नहीं होता

आत्मा का कोई-सा भी गुण वृक्षों एवं वनस्पतियां में नहीं होता। ये प्रकृति की सामान्यता से बने होते हैं। इनमें सामान्य प्राण विद्यमान होता है। वही इनको गति दे रहा है। इनमें प्रविष्ट होकर इनको ऊँचा बना रहा है। इसी सामान्य प्राण की शक्ति के द्वारा ही वृक्षों एवं वनस्पतियों में घटने-बढ़ने की क्रिया एवं सत्ता विराजमान है।

आत्मा का लक्षण तो ज्ञान और प्रयत्न है। इनमें ये दोनों लक्षण नहीं घटते। आत्मा के ये दोनों गुण ज्ञान और प्रयत्न सदा ही उसके साथ रहते हैं। आत्मा जब मुक्त अवस्था में परमात्मा की गोद में पहुँच जाता है तो भी ये दोनों गुण जीव (आत्मा) के साथ वहाँ भी सदा रहते हैं।

क्रीड़ा करने वाले सूक्ष्म से सूक्ष्म कीट को ही देखो। यदि उसको अंगुली से दबाया जाए तो वह काल के मुख से बचकर भागने के नाना प्रकार से यत्न करेगा। यदि अंगुली अलग कर दी जाए तो उसे छूटने का ज्ञान हो जाता है। तब तीव्र गति से भागकर अपने का बचाने का यत्न करता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव या आत्मा का, ज्ञान एवं प्रयत्न स्वाभाविक गुण हैं। ये गुण आत्मा के सदा साथ ही रहते हैं।

जिस समय आत्मा माता के गर्भ में होता है, उस समय इसका सम्बन्ध परमपिता परमात्मा से होता है। परमात्मा से प्रार्थना किया करता है। ज्ञान और प्रयत्न स्वाभाविक होने के नाते अपने प्रभु से याचना करते हुए कहता है, "हे भगवन्! मुझे यहाँ से पृथक करो। मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहता।"

वृक्षों में जीवों के समान ज्ञान एवं प्रयत्न का अभाव है। वृक्षों में वायु का विश्लेषण वायु के संयुक्त तत्वों का अलग-अलग होना बहुत बड़ी मात्रा में होता रहता है। वृक्षों में ज्ञान का अंकुरमात्र भी नहीं होता।

कीड़े से लेकर मनुष्य योनि तक जितनी भी भोग-योनियाँ एवं कर्म-योनियाँ हैं, सबमें ज्ञान और प्रयत्न हैं। परमात्मा ने वृक्षों को ज्ञान और प्रयत्न क्यों नहीं दिए? वृक्षों को माता के गर्भस्थल के तुल्य कदापि नहीं माना जा सकता। जितने भी क्रीड़ा करने वाले जीव हैं, जिनमें भी ज्ञान एवं प्रयत्न दृष्टिगोचर हो रहा है, वे सब माता पृथ्वी के गर्भ में ही रहते हैं। जब माता पृथ्वी के गर्भ में सब प्राणी वृक्षों के साथ रहते हैं, तो इन वृक्षों में जीवों के तुल्य क्रीड़ा क्यों नज़र नहीं आती? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि ये वृक्ष आत्मा रहित हैं। इन वृक्षों में तो सामान्य प्राण है, सामान्यता है।

हमारे आचार्य मानते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में तो सभी हैं। जब यह जीव भौतिक माता के गर्भ में पहुँच जाता है, तब यह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि 'प्रभु! इस नरक से मेरी रक्षा करो।' तब यह परमात्मा के नियम के अनुकूल अपने कर्मफल के भोग के अनुसार संसार सागर में आ जाता है। संसार में आ करके अपने कर्म करने लगता है।

जड़ और चेतन, चर और अचर दोनों प्रकार की सृष्टि परमात्मा ने बनाई है। जल में भी सामान्यता है, यह गति करने वाला है। सूर्य तीनों लोकों को तपा रहा है। प्रकाश एवं उष्णता प्रदान करता है। जल को वाष्प बनाकर इस भूमण्डल पर सर्वत्र वृष्टि करा देता है। वनस्पतियां को जीवन दान देता है। अशुद्धियों को भस्म करके वायुमण्डल को शुद्ध बना देता है। इस सूर्य में भी सामान्यता है। चन्द्रमा कान्ति देने वाला है। वनस्पति जगत में अमृत प्रदान करता है। वायु प्राण देने वाला है। शरीरधारियों का सूक्ष्म प्राण इसी से बनता है। इस प्रकार चन्द्रमा और वायु में भी सामान्यता है।

सामान्यता से तात्पर्य यह है कि आत्मा के लक्षण रूप ज्ञान और प्रयत्न का जहाँ अभाव हो। चाहे वहाँ

परिवर्तन आदि कुछ भी हो रहा हो।

परमात्मा ने इस अपने बनाए संसार को उच्च विधान से बनाया है। सृष्टि के आरम्भ में हमारे लिए स्थावर सृष्टि की रचना व स्थापना की। हमारे लिए नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, फल व पुष्प आदि उत्पन्न किए। मानव जाति तथा सिंहादि विभिन्न जातियाँ उत्पन्न की हैं। सबके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के आहार एवं भोग की सामग्रियां भिन्न-भिन्न रूपों में बनाई हैं। वास्तव में जो जिसका आहार है यदि वह उसी का सदुपयोग करता है तो व्यक्ति का जीवन महत्वपूर्ण तथा महत्व प्रदाता बन जाता है।

आज के अल्पज्ञ मानव कहते हैं कि दूसरे जीवां को मार कर अपने उदर की पूर्ति करने वाला सिंह/शेर पाप का भागी क्यों नहीं, चाहे उसका आहार माँस ही क्यों न हो? महापुरुषों ने स्पष्ट किया है कि सिंह मानव के समान कर्म-योनि नहीं है। वह तो केवल भोग-योनि है। जब वह कर्म करने का अधिकारी ही नहीं, तो वह पाप का भागी कैसे बन सकता है? परमात्मा के न्याय के अनुसार असंख्य वनचर पशु ही उसका भोजन हैं।

प्रश्न है कि मानव का आहार क्या है? मानव का आहार नाना वनस्पतियाँ और वृक्षों पर उगने वाले फल हैं। यदि मानव स्वाभाविक आहार को त्यागकर, सिंह के हिंसामय आहार को करने लगेंगे तो उनका जीवन तुच्छ, निकृष्ट और हीन बन जायेगा। उससे अधिक अभागा कौन होगा? क्योंकि वह परमात्मा के नियम से विपरीत चलकर अपनी आत्मा का हनन कर रहा है? आहार के अतिरिक्त नाना प्रकार के तुच्छ कर्म करता है और मिथ्या उच्चारण करके भी अपनी आत्मा का हनन करता है।

आज का मानव पशु तुल्य आहार करके पशु बनता जा रहा है। वास्तव में जब शुद्ध आहार करते हैं तो उससे हमारी बुद्धि स्वच्छ और निर्मल बन जाती है। हमारा अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। वाणी यथार्थ उच्चारण करती है और सत्य सिद्ध होने लगती है। उस समय हम बौद्धिक पाप नहीं करते हैं। हमारा आत्मा हर प्रकार से उच्च बनता जाता है। अतः मानव को शुद्ध आहार करना चाहिए। आहार सात्विक ही होना चाहिए, राजसिक या तामसिक नहीं।

- **संस्कारां के न रहने का कारण ही मोक्ष है।**
- **सृष्टि की अवधि निश्चित है।**
- **श्वास की गति को शक्तिशाली बनाने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।**
- **तपस्विनी माताएँ ही महापुरुषों को जन्म देती हैं।**
- **सन्तानों की प्रवृत्तियों एवं विचारों का निर्माण माता द्वारा होता है।**
- **योगी के कोटि-जन्मों के संस्कार मस्तिष्क में जागृत हो जाते हैं।**
- **विचार और संकल्प से नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं।**

२५ योग का वास्तविक स्वरूप

आजकल योग के नाम पर लोगां को भ्रमित किया जा रहा है। केवल आसन और प्राणायाम को ही योग समझा जाने लगा है जबकि ऐसा नहीं है। योग के आठों अंगों को समझने की आवश्यकता है।

वास्तव में योग शब्द का अर्थ मिलाना या जुड़ना है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा के साथ जीवात्मा का मेल-मिलाप। परमेश्वर की प्राप्ति करना ही योग कहाता है। योग के अंगों का अभ्यास करना 'योगाभ्यास' कहलाता है। योग-विद्या के आचार्य महर्षि पतंजलि योगशास्त्र को आरम्भ करते ही द्वितीय सूत्र में यही उपदेश करते हैं कि

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों के रोकने का नाम योग है। चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके परमात्मा में स्थिर करना योग है। कई लोग मात्र आसन और प्राणायाम को ही योग कहते हैं। यह तो योग के मात्र दो अंग हैं जबकि योग के आठ अंग हैं। इसलिए योग के आठों अंगों का प्रथम दिन से एक साथ ही अभ्यास किया जा सकता है। यदि सम्पूर्ण योगा अंगों के अभ्यास का आरम्भ एक साथ न हो सके तो योग की क्रिया अंगहीन हो जाएगी। एक भी अंग योगाभ्यास करते समय छूट जाए तो यथावत् योग सिद्ध होना असम्भव है। योग के आठ अंगों की साधना करने से मलिनता का नाश और ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। निम्नलिखित आठ अंग हैंः-

"यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावअंगानि" (ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका) महर्षि दयानन्द अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये योग के आठ अंग हैं। प्रथम पांच बहिरंग और अन्तिम तीन अन्तरंग माने जाते हैं। यम और नियम के पालन से चित्त में निर्मलता और योग में रूचि बढ़ती है। जो व्यक्ति यमां व नियमों का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते, उनका योगमार्ग पर चलना निष्फल होता है। अतः यम-नियम का पालन अत्यावश्यक है। तभी योग में आगे बढ़ा जा सकता है। यम सामाजिक आचरण की व्यवस्था है और नियम व्यक्तिगत।

यम पांच हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम भी पांच हैं-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। यमों और नियमों की सिद्ध करने की विधि यह है कि सदैव सत, रज, तम इन तीनों गुणों का दिन-रात ध्यान रखें। जब कभी रजोगुणी या तमोगुणी कर्मों के करने का संकल्प मन में उठे तभी उनको जान लें तथा वहीं का वहीं रोक भी दें। इस प्रकार अपने मन को संकल्पों-विकल्पों से हटाकर सत्वगुण में स्थिर करें। जिसके स्थिर होने पर सुख का अनुभव हो, वह आसन कहलाता है। जिस व्यक्ति को जो आसन अनुकूल हो, वह उसी का अभ्यास करता हुआ स्थिरता प्राप्त करे। स्थिरता का अभिप्राय है-देह में कहीं भी चंचलता का न उभरना। कम से कम एक घंटा बैठने का अभ्यास होना चाहिए। जल्दी-जल्दी आसन बदलते रहने से शरीर के समान चित्त भी चंचल बना रहता है। आसन की स्थिरता के लिए आहार-विहार का उपयुक्त होना भी आवश्यक है।

आसन के सिद्ध होने पर श्वास-प्रश्वास में अर्थात् सांस के लेने छोड़ने में गति का रुक जाना, रोक देना अथवा अन्तर डाल देना प्राणायाम कहलाता है। महर्षि दयानन्द जी के अनुसार प्राणायाम मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है-बाह्य विषय, आभ्यन्तर विषय, स्तम्भवृत्ति और बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी।

प्राणायाम से आत्मा के ज्ञान का ढकने वाला आवरण जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञान का प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। प्रत्याहार से योगी योग के उस स्तर पर पहुंच जाता है जहां इन्द्रियां पूर्ण रूप से उसके वश में हो जाती हैं। सर्वप्रथम योगी बनने के लिए अपने विचारों को यथार्थ बनाना चाहिए। अपनी त्रुटियों को खोजना चाहिए, दूसरां की त्रुटियां को नहीं देखना चाहिए। इस प्रकार धारणा, ध्यान व समाधि में लय होने लगेंगे। जिस मानव ने अपनी त्रुटियां को नहीं जाना और कहता है कि मैं परमात्मा की सर्व विधाओं को जानता हूँ तो यह उसका केवल अहंकार है।

योगी अपनी प्रत्येक इन्द्रियों पर संयम करने वाला होता है। मन और प्राण की सन्धि कर लेता है। दोनों की सन्धि में रमण करने वाला योगी इस भौतिक जगत में विचलित नहीं होता, विचलित वह होता है जो अपने जीवन में द्रव्य एकत्रित करने का साधन बना लेता है।

योग साधना का विषय है। परमात्मा से अपने आपको कैसे जोड़ना है यह जानने का विषय है। आसन और प्राणायाम से शरीर को स्वस्थ रखकर यम नियमों का पालन करके प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि तक पहुंचने का नाम ही योग है। आर्य समाज के संस्थापक, राष्ट्रोद्धारक महर्षि दयानन्द एक महान योगी थे। उन्होंने योग के आठों अंगों का पालन किया था। वह कई-कई घंटों की समाधि लगाया करते थे। हमें उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए।

- **व्यक्ति, परिवार और समाज के उत्थान के लिए तपस्या अनिवार्य है।**
- **भोगी-विलासी का जीवन क्षणिक होता है।**
- **कंचन और कामिनी में अधिक लिप्त हो जाना ही मानव की मृत्यु है।**
- **जो मानव अशुद्ध उच्चारण करते हैं, अगले जन्मों में परमात्मा उनसे वाणी को छीन लेते हैं।**
- **जिनका इन्द्रियों पर संयम नहीं होता, वे आत्मा का हनन करते हैं।**
- **परमात्मा का गुणगान गाने से हृदय में आनन्द की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं।**

२६ गुरुदेव की कर्मभूमि, लाक्षागृह बरनावा

दिल्ली से ४३ मील दूर बड़ौत से मेरठ जाने वाली सड़क के दाईं ओर एक बहुत ऊंचा टीला स्थित है। यह टीला काली व हिण्डन नदी के संगम पर लगभग २० एकड़ भूमि पर फैला हुआ है। आसपास के ग्रामों में यह टीला लाखामंडप के नाम से प्रसिद्ध है। यहीं पर कौरवों ने पाण्डवों को जीवित जलाने के लिए लाक्षागृह बनवाया था। सड़क के बाईं ओर बरनावा नामक एक ग्राम स्थित है जो महाभारत काल में वारणावत के नाम से प्रसिद्ध था। यह उन पांच ग्रामां में से एक है जो भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध को रोकने के लिए दुर्योधन से पांचों पाण्डवों के लिए मांगे थे। उस समय इनकी जनसंख्या लगभग २२ लाख थी।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ यहां अनेक उतार-चढ़ाव हुए हैं। महाभारत काल से पूर्व यह पवित्र भूमि महान ऋषियों की तपोभूमि रही। महर्षि श्रृंगी, महर्षि महानन्द, महर्षि जैमिनी व महर्षि व्यास ने अपने-अपने जीवन काल में यहां चतुर्वेद पारायण यज्ञ किए। यहीं पर कौरवों तथा पाण्डवों ने गुरु द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त की। यहीं पर अर्जुन, भीम और घटोत्कच की विज्ञानशालाएं थीं। महाभारत के युद्ध के बाद यहां राजा परीक्षित का न्यायालय था। इसके पश्चात् यहां श्वेतशक्ति नामक वैश्य ने एक विशाल शिवालय का निर्माण करवाया था। मुगलकाल में इस शिवालय को नष्ट कर दिया गया और मुसलमानों ने इस पवित्र भूमि को कब्रिस्तान बना दिया।

प्राचीन ऐतिहासिक स्थान होने के कारण यह स्थान केन्द्रीय सरकार के पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत है। सन् १९६० तक यह स्थान निर्जन तथा उजड़ा हुआ था। यहां आध्यात्मिक जगत की महान विभूति एवं अद्भुत योगी ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का आगमन हुआ था। ब्रह्मचारी जी पुनर्जन्म का साक्षात् चमत्कार थे और बचपन से ही योगमुद्रा में वैदिक प्रवचन करते थे। ब्रह्मचारी जी ने इस पवित्र भूमि को अपना निवास स्थान बना लिया। इनकी प्रेरणा से आसपास के ग्रामवासियां ने यहां गांधी धाम समिति (रजि.) की स्थापना की, जिसके अन्तर्गत श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय (रजि.) चल रहा है। यहां प्राचीन वैदिक पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क शिक्षा एवं आवास का प्रबन्ध है। काली और हिण्डन नदी के संगम पर ही पूज्य बापू, महात्मा गांधी की अस्थियां विसर्जित की गई थीं। ब्रह्मचारी जी ने पूज्य बापू की एक संगमरमर की मूर्ति यहां स्थापित करवाई थी जिससे इस स्थान की शोभा और भी बढ़ गई है।

लगभग ५००० वर्ष पश्चात् यहां पुनः विद्युत का प्रकाश हुआ। पांच विशाल यज्ञशालाएं, श्री महानन्द मंदिर, श्री महानन्द हाल और एक गऊशाला यहां विशेष रूप से दर्शनीय हैं। प्राचीन भवनों, सुरंग और शिवालय के अवशेष अब भी विद्यमान हैं। ब्रह्मचारी जी यहां प्रति वर्ष चतुर्वेद पारायण यज्ञ करवाते थे जिसमें देश के अनेक विद्वान सम्मिलित होते थे। इन दिनों यहां मेला-सा लगा रहता है। पूर्णाहुति के अवसर पर दूर-दूर के विभिन्न नगरों से बसों द्वारा लोग यहां आते हैं।

ब्रह्मचारी जी के अथक प्रयत्नों से ऊंची-नीची भूमि को समतल कर दिया गया है। हरी-भरी लहलहाती खेती एवं विभिन्न प्रकार के फूल-पौधे देख कर मन प्रसन्नता से जगमगा उठता है। प्रतिदिन वेदमंत्रां का उच्चारण सुनकर प्राचीन काल स्मरण हो उठता है। यहां का वातावरण बहुत रमणीक और शांत है। ध्यान लगाने वालों के लिए यह स्थान बहुत उपयुक्त है। ब्रह्मचारी जी की धारणा थी कि इस स्थान को पुनः पहले जैसी पुण्य भूमि बनाया जाए ताकि प्राचीन स्थान का गौरव बढ़े।

- **जीवन-मुक्त प्राणियों को पाप और पुण्य दोनों नहीं व्यापते।**

- मन विभाजन करने वाला तथा प्राण विभाजित होने वाला है।
- वेद का ज्ञान सब लोक-लोकान्तरों में है और सम्पूर्ण विद्याओं का मूल वेद है।
- वेद का प्रत्येक मन्त्र तथा उसका शब्दार्थ 'ओ३म्' से बिन्धा है।
- वेद ज्ञान आर्ष है, अमर है।
- सारी भाषाओं का मूल वैदिक भाषा है।
- वेदों की रचना मानव नहीं कर सकता।
- वेद ईश्वरीय वाणी है।